जयपाल सिंह मुंडा और आदिवासी राजनीति

कमल नयन चौबे

जयपाल सिंह मुंडा आदिवासियों के बीच चेतना जगाने वाले कुछ प्रमुख ऐतिहासिक चरित्रों में से एक हैं। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान, संविधान सभा के सदस्य के रूप में और बाद के दौर में झारखंड पार्टी के अध्यक्ष और सांसद के रूप में लगातार आदिवासी प्रश्न की विशिष्टता पर बल दिया। उन्होंने आदिवासियों की चिंताओं को अखिल भारतीय राष्ट्रवाद की रूपरेखा में पूरी तरह समाहित कर देने का पुरज़ोर विरोध किया क्योंकि वे यह मानते थे कि ऐसी स्थिति में आदिवासी प्रश्न को बड़ी आसानी से हाशिए पर ढकेल दिया जाता है। जयपाल सिंह की राजनीति आदिवासी अस्मिता से प्रेरित थी, और उन्होंने आदिवासियों के लिए अलग प्रांत बनाने का न सिर्फ़ ज़ोरदार समर्थन किया, बल्कि इसे अपनी राजनीति का बुनियादी आधार भी बनाया। इस शोध-आलेख का लक्ष्य यह विचार करना है कि राष्ट्रवाद की व्यापक रूपरेखा में हाशिए के एक समूह अर्थात् आदिवासियों के अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए जयपाल सिंह ने परंपरा और आधुनिकता, तथा राष्ट्रवाद और क्षेत्रीय स्वायत्तता के जटिल संबंधों को किस प्रकार समझा, और उनके लिए इनके बीच के अंतर्विरोधों से आगे जाने का रास्ता क्या था? यहाँ जयपाल सिंह मुंडा के जीवन, और उनकी राजनीतिक गतिविधियों के विशद वर्णन के साथ ही उनके विचारों के कुछ प्रमुख तत्त्वों का विश्लेषण

किया गया है। आलेख में इस बात की जाँच-पड़ताल की गई है कि जयपाल सिंह के विचारों और समकालीन मूल निवासी (इंडिजेनस पीपल) विमर्श में क्या साम्य है, और मौजूदा दौर में आदिवासियों की राजनीति के संदर्भ में उनके विचारों की क्या प्रासंगिकता है।

यह आलेख पाँच भागों में बँटा हुआ है। पहले भाग में जयपाल सिंह का जीवन परिचय प्रस्तुत किया है, और उनके जीवन की विविध घटनाओं का वर्णन किया गया है; दूसरे भाग में जयपाल सिंह के कॉन्ग्रेस के नेताओं के साथ उथल-पुथल भरे संबंधों और गांधीवाद की आलोचना का विश्लेषण है; तीसरे भाग में जयपाल के लेखन और विचारों में आदिवासी स्वायत्तता के प्रश्न और भारतीय राष्ट्रवाद से उसकी अंतःक्रिया के कुछ प्रमुख आयामों की विवेचना की गई है; चौथे भाग में मौजूदा दौर में मूल निवासी विमर्श के संदर्भ में जयपाल सिंह के विचारों की प्रासंगिकता और उनकी सीमाओं को दर्शाया गया है। पाँचवाँ भाग आलेख का निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

I. जयपाल सिंह मुंडा : आदिवासी हक़ के लिए समर्पित जीवन

जयपाल सिंह सिर्फ़ एक राजनेता नहीं थे, बल्कि एक सुप्रसिद्ध हॉकी खिलाड़ी भी थे जिनके नेतृत्व में भारत ने 1928 का ओलंपिक जीता था। इन्होंने कुछ देशी रियासतों में एक प्रशासक और शिक्षक के रूप में भी काम किया। इसलिए ये एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में सामने आते हैं, जो आदिवासी अस्मिता पर ज़ोर देने के साथ ही साथ आधुनिक शिक्षा और विकास के अन्य आयामों के महत्त्व को समझते थे। इनके पूर्व बिरसा मुंडा ने उन्नीसवीं सदी के आख़िरी दशकों में ब्रिटिश राज के ख़िलाफ़ विद्रोह का नेतृत्व करके आदिवासियों की आज़ादी की भावना को अभिव्यक्त किया था।[1] बिरसा मुंडा से पहले भी सैकड़ों आदिवासी विद्रोहों ने अंग्रेज़ों द्वारा प्राकृतिक वन संसाधनों पर क़ब्ज़ा जमाने का डटकर विरोध किया था।[2] जयपाल सिंह ने अपनी राजनीति के माध्यम से आदिवासियों की स्वायत्त प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकारों के संदर्भ में इन्हीं मूल्यों को सहेजने और बढ़ाने की कोशिश की।

जयपाल सिंह का जन्म तत्कालीन राँची ज़िले के खूँटी थाना अंतर्गत टकरा पाहन टोली नामक गाँव में हुआ था (वर्तमान समय में खूँटी ख़ुद एक अलग ज़िला है)। इनकी वास्तविक जन्मतिथि ज्ञात नहीं है किन्तु बाद में 3 जनवरी, 1903 को इनका जन्मदिन मान लिया गया। इनके पिता अमरू पाहन आदिवासी पुरोहित थे, और कई बार ये अपने नाम के साथ मुंडा भी लगाते थे। हालाँकि जयपाल का आरंभिक नाम प्रमोद पाहन था, लेकिन बाद में यह बदलकर

[1] बिरसा मुंडा के बारे में जानकारी के लिए देखें कुमार सुरेश सिंह (1983) और महाश्वेता देवी (1998). यह भी ग़ौरतलब है कि जयपाल सिंह अक्सर 'आदिबासी' शब्द का प्रयोग करते थे. लेकिन बाद में 'आदिवासी' शब्द ही प्रचलित हो गया. हिंदी में उन पर लिखी पुस्तकों में भी इसी शब्द का प्रयोग है. एकरूपता क़ायम रखने के लिए इस आलेख में भी आदिवासी शब्द का ही इस्तेमाल किया है.

[2] इस संदर्भ में जानकारी के लिए देखें, के. एस. सिंह (सं.) (1982); नंदिनी सुंदर (1997) : 135-55.

जयपाल सिंह कर दिया गया।[3] जयपाल सिंह की पाँच बहनें और (इनके अलावा) दो भाई थे। इनकी आरंभिक शिक्षा टकरा के प्राथमिक स्कूल में हुई। 1910 में जयपाल के पिता ने इनका दाख़िला राँची के संत पॉल स्कूल में करवा दिया। 1910 से 1919 तक उन्होंने इस स्कूल में शिक्षा प्राप्त की।[4] संत पॉल स्कूल में जयपाल सिंह की पहचान एक मेहनती और होनहार छात्र की थी और इस स्कूल के प्रिंसिपल फ़ादर कैनन कॉसग्रेव उन्हें काफ़ी पसंद करते थे। 1919 में स्कूल के प्रिंसिपल के पद से अवकाश लेकर वापस अपने देश इंग्लैण्ड जाने लगे, तो उन्होंने जयपाल सिंह को भी अपने साथ ले जाने का फ़ैसला किया। उन्होंने जयपाल को ईसाई धर्म में दीक्षित किया। चूँकि कैनन उन्हें पादरी बनाना चाहते थे, इसलिए 1920 में उन्हें इस संदर्भ में प्रशिक्षण हासिल करने के लिए ऑगस्टीन कॉलेज केंटबरी भेजा गया। हालाँकि ख़ुद जयपाल की रुचि इस काम में नहीं थी, अतः दो वर्ष बाद उन्हें ऑक्सफ़र्ड के सेंट जॉन कॉलेज में दाख़िला दिलाया गया और उन्हें यहाँ 40 पाउंड की स्कॉलरशिप भी मिली और उन्होंने यहीं से बी.ए. की डिग्री हासिल की।

जयपाल सिंह की खेल-कूद में काफ़ी रुचि थी और उन्होंने हॉकी में काफ़ी महारत हासिल कर ली थी। हॉकी खिलाड़ी के रूप में वे न सिर्फ़ भारतीय टीम में चुने गये, बल्कि 1928 के ऐमस्टरडम ओलंपिक में उन्होंने भारतीय टीम की कप्तानी भी की। ओलंपिक में हॉकी को 1908 में शामिल किया गया था और भारतीय टीम ने सबसे पहले 1928 के ओलंपिक खेलों में ही भागीदारी की थी। इस ओलंपिक में भारतीय हॉकी टीम ने स्वर्ण पदक जीता था, हालाँकि फ़ाइनल मैच में जयपाल सिंह नहीं खेले थे। 1932 लॉस एंजिल्स (अमेरिका) ओलंपिक में भी उन्हें फिर से भारतीय हॉकी टीम का कप्तान बनाए जाने की चर्चा थी, लेकिन कंपनी कार्यों से छुट्टी न मिल पाने कारण वे हॉकी टीम में शामिल नहीं हो सके।[5] जयपाल सिंह की महत्त्वाकांक्षा आईसीएस (इंडियन सिविल सर्विसेज या भारतीय प्रशासनिक सेवा) में जाने की भी थी। वे 1928 के ओलंपिक के पहले इसके लिए चयनित भी हो चुके थे। लेकिन ओलंपिक से वापस ऑक्सफ़र्ड आने के बाद उनके प्रोबेशन की अवधि यह कहते हुए एक वर्ष बढ़ा दी गई कि वे छुट्टी लिए बग़ैर ओलंपिक में भाग लेने चले गये थे। इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर

[3] यह भी ग़ौरतलब है कि जयपाल सिंह ने राजनीति में आने से पहले कभी भी अपने नाम के साथ 'मुंडा' शब्द नहीं जोड़ा. देखें, अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 42; शायद उन्हें इस बात का अहसास था कि तमाम योग्यताओं के बावजूद आदिवासी के रूप में सामने आने पर उनके साथ समान व्यवहार नहीं किया जाएगा तथा हीन और पिछड़ा मानते हुए उनकी उपेक्षा की जाएगी. प्रस्तुत शोध आलेख में अमूमन जयपाल सिंह और जयपाल सिंह मुंडा – दोनों का ही प्रयोग किया गया है.

[4] हालाँकि यह स्पष्ट नहीं है कि इनका नाम कैसे बदला लेकिन यह जनश्रुति है कि उनके परिवार में आने वाले एक पंडित ने उनका नाम प्रमोद से बदलकर जयपाल रख दिया. बलबीर दत्त (2017) : 27-30.

[5] राजनीति में आने के बावजूद जयपाल सिंह की खेलों में रुचि निरंतर बनी रही. वे 1951 से कई वर्षों तक अखिल भारतीय ध्यानचंद हॉकी टूर्नामेंट के अध्यक्ष रहे. यह भी माना जाता है कि उनकी प्रसिद्धि ने वर्तमान झारखंड क्षेत्र में बहुत युवक/युवतियों को खेलों, विशेष रूप से हॉकी की ओर आकृष्ट किया. इसी कारण जयपाल सिंह के बाद इस क्षेत्र से पुरुष और महिला हॉकी के कई प्रसिद्ध खिलाड़ी हुए. राँची में जयपाल सिंह के नाम पर जयपाल सिंह स्टेडियम की स्थापना की गई है. देखें बलबीर दत्त (2017) : 43.

जयपाल सिंह ने आईसीएस से इस्तीफ़ा दे दिया।[6]

इसके बाद 1928 के अंत में उन्हें 'रॉयल डच शेल ग्रुप' नामक एक विदेश व्यापारिक कंपनी में मर्केंटाइल असिस्टेंट के पद पर नियुक्त किया गया, जो काफ़ी प्रतिष्ठा का पद था। 1934 से 1937 तक इन्होंने पश्चिमी अफ़्रीक़ी देश गोल्ड कोस्ट (वर्तमान घाना) के अचीमोटा कॉलेज में वाणिज्य शिक्षक के पद पर काम किया। जयपाल सिंह की ये दोनों ही नियुक्तियाँ अपने आप में उपलब्धि थीं क्योंकि उनके पहले रॉयल डच शेल ग्रुप ने इतने बड़े पद पर किसी भारतीय को नियुक्त नहीं किया था, और उनसे पहले गोल्ड कोस्ट के अचीमोटा कॉलेज में वाणिज्य के शिक्षक के रूप में अमूमन सिर्फ़ अंग्रेज़ शिक्षकों की ही नियुक्ति होती रही थी। अठारह वर्षों तक विदेश में रहने के बाद 1937 में जयपाल सिंह भारत आए, और उन्हें रायपुर (वर्तमान छत्तीसगढ़ की राजधानी) के राजकुमार कॉलेज में वरिष्ठ सहायक प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया। इसके कुछ समय बाद वे बीकानेर रियासत (राजस्थान) में राजस्व आयुक्त तथा कार्यवाहक कोलोनाइज़ेशन मिनिस्टर के पद पर नियुक्त हुए।[7] ग़ौरतलब है कि जयपाल सिंह ने दो बार शादी की। पहली शादी कॉन्ग्रेस के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष व्योमेश चंद्र बनर्जी की नतिनी तारा मजूमदार के साथ 1931 में दार्जिलिंग में हुई थी। पहली पत्नी से जयपाल सिंह को तीन संतानें हुईं। लेकिन कई मसलों पर अनबन होने के कारण दोनों के बीच तलाक हो गया। जयपाल सिंह ने 1954 में दूसरी शादी जहाँआरा से की। जहाँआरा से भी जयपाल सिंह को तीन संतानें हुईं।[8]

इस बीच 1938 में जयपाल सिंह राँची आए, और वहाँ उनसे इस क्षेत्र के आदिवासियों को राजनीतिक रूप से जागरूक बनाने का काम करने वाले संगठन आदिवासी सभा के नेता मिले, और उनसे आदिवासी महासभा[9] में शामिल होकर आदिवासियों के हक़ की आवाज़ उठाने का अनुरोध किया।[10] आदिवासी महासभा द्वारा जयपाल सिंह को आमंत्रित करने की

---

[6] बलबीर दत्त (2017) : 45; अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 38-41. हालाँकि बलबीर दत्त जयपाल सिंह के विरोधियों द्वारा फैलाई गई इस बात का भी उल्लेख करते हैं कि उनके प्रोबेशन की अवधि इसलिए बढ़ाई गई थी क्योंकि वे लंदन के नगरीय ट्रेन में बिना टिकट के यात्रा करते पाये गये थे. 1963 में कॉन्ग्रेस के साथ झारखंड पार्टी का विलय हो जाने के बाद उनके कुछ विरोधियों ने उनके ख़िलाफ़ परचा निकाला था, जिसमें इस तथ्य का भी उल्लेख किया गया था. देखें, बलबीर दत्त (2017) : 46.

[7] अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 46-48.

[8] बलबीर दत्त (2017) : 246-53.

[9] आदिवासी महासभा की स्थापना के बारे में सन 1941 में एम. डी. तिग्गा ने नागपुरी में *छोटानागपुर के पुत्री* शीर्षक से एक पुस्तक लिखी जो गोस्सनर इवैंजेलिकल लूथरन प्रेस से छपी थी. इसमें यह बताया गया कि आदिवासियों के राजनीतिक और आर्थिक पतन के कारण 1868 में एक सभा या संगठन का गठन हुआ. उसका आरंभिक नाम छोटानागपुर क्रिश्चियन एसोसिएशन था. 1915 आते-आते यह सभा काफ़ी मज़बूत हो गयी, और अब उसका नाम छोटानागपुर उन्नति सभा रख दिया गया. आख़िरकार, 1938 में इसका नाम आदिवासी महासभा रख दिया गया. बलबीर दत्त (2017) : 114-15.; यह भी ग़ौरतलब है कि 1931 में छोटानागपुर उन्नति समाज के नेताओं में इस क़दर मतभेद हुआ कि कई अलग-अलग संगठन बन गये. 1935 के भारत शासन अधिनियम के तहत हुए चुनावों में जब विभिन्न गुटों के उम्मीदवारों को हार का सामना करना पड़ा, तो 1938 में इन्होंने साथ आकर 'अखिल भारतीय आदिवासी महासभा' (जिसे अमूमन आदिवासी महासभा के नाम से ही जाना गया) का गठन किया. देखें, अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 54.

एक प्रमुख वजह यह थी कि उन्होंने ऑक्सफ़र्ड से शिक्षा ग्रहण की थी, राष्ट्रीय स्तर पर लोग उन्हें जानते थे, वे अंग्रेज़ी भाषा में भी पारंगत थे तथा अंग्रेज़ों और कॉन्ग्रेस नेताओं के समक्ष आदिवासियों की माँगों को सामने रखने में समर्थ थे। जयपाल सिंह के पास कॉन्ग्रेस में शामिल होकर काम करने का प्रस्ताव भी था, लेकिन बिहार के गवर्नर से बातचीत के बाद उन्होंने आदिवासी सभा के साथ जुड़ने का फ़ैसला किया और इस तरह उनके राजनीतिक जीवन की शुरुआत हुई।[11] वे 1939 में आदिवासी महासभा में शामिल हुए और उन्होंने *आदिवासी सकम* साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन भी आरंभ किया।[12]

जयपाल सिंह और बिहार कॉन्ग्रेस के नेताओं के बीच राजनीतिक होड़ थी। जयपाल सिंह आदिवासियों को ज़्यादा बेहतर प्रतिनिधित्व और अलग प्रांत देने के मसले पर कॉन्ग्रेस के रवैये से नाखुश थे, और उन्हें यह लगता था कि विशेष रूप से बिहार कॉन्ग्रेस के नेता आदिवासियों के हितों की जानबूझकर अवहेलना कर रहे हैं।[13] इसी दौर में मुस्लिम लीग, विशेष रूप से बंगाल मुस्लिम लीग के नेताओं की आदिवासी महासभा के साथ निकटता बढ़ी। इन्होंने जयपाल सिंह और आदिवासी महासभा को अपने साथ जोड़ने का प्रयास किया। जयपाल सिंह ने अपनी माँगों के प्रति कॉन्ग्रेस की उदासीनता के कारण और ब्रिटिश सरकार

---

[10] बलबीर दत्त (2017) : 46-7.

[11] बलबीर दत्त के अनुसार, जयपाल सिंह दीनबंधु एंड्रूज की चिट्ठी लेकर पटना में डॉ. राजेंद्र प्रसाद से मिले थे, और उन्होंने उन्हें कॉन्ग्रेस पार्टी के काम में पूरा समय देने के लिए 300 रुपये देने का प्रस्ताव दिया (कॉन्ग्रेस उस समय कुछ ऐसे कार्यकर्ताओं को मानदेय देती थी, जो अपना पूरा समय पार्टी के काम को देते थे). लेकिन प्रसाद से मिलने के बाद जयपाल सिंह ब्रिटिश गवर्नर सर मॉरिस हैलेट से मिलें, और उनके सुझाव को मानते हुए उन्होंने राँची में आदिवासी महासभा के माध्यम से आदिवासियों को संगठित करने का फ़ैसला किया. दत्त यह दलील देते हैं कि यह मॉरिस हैलेट द्वारा जयपाल सिंह को राष्ट्रीय आंदोलन से दूर रखने और आदिवासियों को इस आंदोलन से दूर करने का षड्यंत्र था. दत्त इसमें अंग्रेज़ सरकार द्वारा जयपाल सिंह को हर प्रकार की सहायता देने के कारक को भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं. देखें वही : 48-51.

[12] अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 17.

[13] शोध-आलेख के दूसरे भाग में इस पहलू की पड़ताल की गई है.

को अपनी प्रासंगिकता दिखाने के लिए मुस्लिम लीग से अपनी निकटता बढ़ाई किन्तु 1946 के बाद वे पूरी तरह मुस्लिम लीग से दूर हो गये।[14]

हालाँकि जयपाल सिंह 1946 में प्रांतीय असेंबली के चुनाव में पराजित हो गये थे, लेकिन वे उसी साल संविधान सभा के लिए चुन लिए गये थे।[15] उन्होंने भारतीय संविधान सभा के सदस्य की महती भूमिका निभाई और वहाँ आदिवासियों की आवाज़ को मुखर रूप से अभिव्यक्त किया। संविधान सभा में अपनी वक्तृता से न सिर्फ़ अन्य लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा, बल्कि आदिवासियों के मुद्दों को भी मुखरता से सामने रखा। उन्होंने 'मुख्यधारा' के राष्ट्रीय आंदोलन की आदिवासियों की समझ को प्रश्नांकित किया, जिसमें यह माना जाता था कि आदिवासी 'पिछड़े' हैं, और उन्हें मुख्यधारा में लेकर आना है। उन्होंने संविधान सभा में यह कहा कि आदिवासियों को अमूमन जंगली कहा जाता है, लेकिन उन्हें जंगली होने पर है। 19 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा में अपने संबोधन में उन्होंने यह कहा कि :

> मैं उन लाखों नादान और अनजान लोगों की ओर से बोलने के लिए खड़ा हुआ हूँ, जो आज़ादी की लड़ाई लड़ने वाले योद्धा हैं। भले ही दुनिया उनकी क़द्र नहीं करे, लेकिन वे भारत के मूल निवासी हैं। इन्हें पिछड़े क़बीले, आदिम क़बीले, जरायम पेशा क़बीले, आदि न जाने कितने नामों से पुकारा जाता है। सर, मुझे इस बात का फ़ख्र है कि मैं जंगली हूँ...हम लोग जो जंगलों में रहते हैं, इस बात को बख़ूबी समझते हैं कि संविधान के लक्ष्य और उद्देश्य संबंधी प्रस्ताव का अर्थ क्या है? मैं तीन करोड़ से अधिक आदिवासियों की ओर से इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।[16]

रामचंद्र गुहा ने यह रेखांकित किया है कि संविधान में आदिवासियों (अनुसूचित जनजातियों) को दलितों (अनुसूचित जातियों) की तरह आरक्षण का अधिकार दिलाने में जयपाल सिंह ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। संविधान सभा में अगस्त 1947 में अल्पसंख्यक अधिकारों से संबंधित पहली रपट को सार्वजनिक कर दिया गया था। इसमें सिर्फ़ अछूतों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया था। जयपाल सिंह ने संविधान सभा में इस बात पर गहरा अफ़सोस जताया कि 'सबसे ज़्यादा ज़रूरतमंद समूह आदिवासी को तस्वीर से पूरी तरह बाहर रखा गया है।'[17] संविधान सभा ने प्रसिद्ध समाज सुधारक ए. वी. ठक्कर के नेतृत्व में जनजातीय अधिकारों के लिए एक उप-समिति का गठन किया था। इस उप-समिति की रपट, और इसके

[14] शोध-आलेख के तीसरे भाग में इस पहलू का विस्तार से विश्लेषण किया गया है.

[15] संविधान सभा का चुनाव ब्रिटिश प्रांतों की विधानसभाओं द्वारा किया गया था. ये चुनाव वयस्क मताधिकार पर आधारित चुनाव नहीं थे. आम जनता के बजाय सिर्फ़ कुछ विशिष्ट वर्गों, संपत्ति धारकों, डिग्री धारकों और आयकर देने वालों को ही मतदान का अधिकार प्राप्त था. 9 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा का विधिवत गठन हुआ और 26 नवम्बर, 1949 को इसकी अंतिम बैठक हुई. संविधान सभा को बाद में अस्थायी लोकसभा का रूप दे दिया गया. देखें, बलबीर दत्त (2017) : 110.

[16] वही : 111-112.

[17] सीएडी, वॉल्यूम 5 : 210; रामचंद्र गुहा (2007) : 115 पर उद्धृत.

सदस्य के रूप में जयपाल के शब्दों ने संविधान सभा को आदिवासियों की स्थिति के बारे में ज़्यादा संवेदनशील बनाया। इसने विधायिका और सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों को आरक्षित करने का प्रावधान करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।[18]

जयपाल सिंह ने उन आदिवासी भाषाओं का संरक्षण करने और उनका संवर्द्धन करने पर बल दिया जिनके पास अपनी लिपि नहीं थी। संविधान सभा में 8 दिसम्बर, 1948 को मूल अधिकारों के अंतर्गत भाषा, लिपि और संस्कृति के संरक्षण पर बहस के समय उन्होंने मुंडारी जैसी आदिवासी भाषाओं के संरक्षण पर भी ज़ोर दिया।[19] जयपाल सिंह ने राजनीतिक संरक्षण पर बहस के समय इस बात पर बल दिया कि आदिवासियों की जमीनों की रक्षा के लिए बने मौजूदा क़ानूनों को क़ायम रखा जाए, तथा ज़रूरत पड़ने पर इन क़ानूनों को और ज़्यादा मज़बूत बनाया जाए।[20] उन्होंने विधायिका में आदिवासियों के लिए सीटों को आरक्षित करने का समर्थन किया, और यह कहा कि देशी रियासतों में भी आदिवासियों का उचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाना चाहिए। उन्होंने आरक्षण का विरोध करने वालों को 'अलोकतांत्रिक' क़रार देते हुए यह कहा कि आदिवासियों को उनके जंगल के जीवन से आने को बाध्य करने हेतु आरक्षण आवश्यक है।[21]

> उन्होंने आदिवासियों की चिंताओं को अखिल भारतीय राष्ट्रवाद की रूपरेखा में पूरी तरह समाहित कर देने का पुरज़ोर विरोध किया क्योंकि वे यह मानते थे कि ऐसी स्थिति में आदिवासी प्रश्न को बड़ी आसानी से हाशिए पर ढकेल दिया जाता है। जयपाल सिंह की राजनीति आदिवासी अस्मिता से प्रेरित थी, और उन्होंने आदिवासियों के लिए अलग प्रांत बनाने का न सिर्फ़ ज़ोरदार समर्थन किया, बल्कि इसे अपनी राजनीति का बुनियादी आधार भी बनाया।

1 जनवरी, 1948 में हुए खरसावाँ नरसंहार ने जयपाल सिंह की सोच पर गहरी छाप डाली। इस दिन खरसावाँ के साप्ताहिक बाज़ार में खरसावाँ को ओडिशा में शामिल किये जाने के ख़िलाफ़ एक विशाल जुलूस का आयोजन किया गया था। इस जुलूस के दौरान पुलिस द्वारा की गई गोलीबारी में बड़ी संख्या में लोग मारे गये। सोशलिस्ट पार्टी के नेता राममनोहर

---

[18] रामचंद्र गुहा (2007) : 116-17.

[19] बलबीर दत्त (2017) : 112.

[20] वही : 112.

[21] वही : 112-113; संविधान सभा में जयपाल सिंह की भूमिका के विस्तृत विश्लेषण के लिए देखें संतोष कीरो (2018) : 63-108.

लोहिया ने इसे दूसरे जलियाँवाला बाग़ की संज्ञा दी।[22] इस घटनाक्रम ने जयपाल सिंह के इस विश्वास को मज़बूती प्रदान की कि झारखंड क्षेत्र का आम आदिवासी अलग-अलग राज्यों में विभाजित होने के स्थान पर एकजुट रहना चाहता है।

जयपाल सिंह ने एक पृथक झारखंड राज्य की माँग को ज़्यादा मज़बूती से आगे बढ़ाने के लिए 1 जनवरी, 1950 को झारखंड पार्टी की स्थापना की।[23] इसमें ग़ैर-आदिवासियों को भी शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया। जयपाल सिंह ने यह कहा कि 'आज हम अपनी पार्टी के द्वार ग़ैर-आदिवासियों के लिए पूर्ण रूप से खोल रहे हैं। झारखंड पार्टी, झारखंड क्षेत्र में निवास करने वाले प्रत्येक आदिवासी तथा ग़ैर-आदिवासी की अपनी एक राजनीतिक संस्था है।'[24] यह फ़ैसला किया गया कि आदिवासी महासभा सिर्फ़ सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों तक सीमित रहेगी।[25]

1952 के आम चुनावों के पहले 4 जून, 1951 को राँची में एक जनसभा को संबोधित करते हुए जयप्रकाश नारायण ने झारखंड पार्टी के नेताओं का आह्वान किया कि वे सोशलिस्ट पार्टी के साथ चुनावी गठजोड़ करें, लेकिन जयपाल सिंह ने इस दिशा में कोई रुचि नहीं दिखाई। निश्चित रूप से, यदि इन दोनों दलों में गठजोड़ हो जाता तो बिहार में कॉन्ग्रेस को ख़ासी चुनौती का सामना करना पड़ता।[26] 1952 में इनकी पार्टी को बिहार विधानसभा में 33 सीटों पर जीत मिली और यह बिहार विधानसभा में मुख्य विपक्षी दल बन गई। इसी तरह, खूँटी लोकसभा क्षेत्र में जयपाल सिंह को कुल 61 प्रतिशत वोट मिले और उनके निकटतम कॉन्ग्रेस उम्मीदवार को 32 प्रतिशत वोट ही मिले।[27] 1952 में, जयपाल सिंह ने एक बड़े ज़मींदार कामाख्या नारायण सिंह को अपनी पार्टी से राज्यसभा के लिए टिकट दिया। इसके चलते झारखंड पार्टी के भीतर और बाहर जयपाल सिंह की आलोचना हुई क्योंकि कामाख्या नारायण सिंह का झारखंड पार्टी के उद्देश्यों या लक्ष्यों से कोई लेना-देना नहीं था; इसके अलावा, जयपाल सिंह ग़ैर-आदिवासियों को दिकू (या बाहरी) तथा आदिवासियों का शोषणकर्ता घोषित करते थे, ऐसे में एक ग़ैर-आदिवासी बड़े ज़मींदार को राज्यसभा भेजने का उनका फ़ैसला उनकी पार्टी के कार्यकर्ताओं और अन्य लोगों की समझ से परे था। यह भी कहा गया कि इसके लिए कामाख्या नारायण सिंह ने जयपाल सिंह की झारखंड पार्टी को बड़ी आर्थिक सहायता भी उपलब्ध कराई थी।[28]

---

[22] संतोष कीरो (2018) : 109.

[23] झारखंड पार्टी का स्थापना सम्मेलन जमशेदपुर स्थित करमडीह मैदान में 31 दिसम्बर, 1949 से 1 जनवरी, 1950 को हुआ था. देखें बलबीर दत्त (2017) : 117.

[24] अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 72; शैलेन्द्र महतो (2011) : 148.

[25] बलबीर दत्त (2017) : 117.

[26] वही : 118-19.

[27] वही : 127.

[28] वही : 123.

जयपाल सिंह के नेतृत्व में झारखंड पार्टी दक्षिण बिहार के इलाक़े को एक पृथक राज्य बनाने की माँग रखी थी (असल में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश के बाद जयपाल सिंह ने हमेशा ही इस माँग को ज़ोर-शोर से उठाया)। 1953 में केन्द्र सरकार ने फ़ज़्ल अली के नेतृत्व में राज्य पुनर्गठन आयोग बनाया, जिसमें उनके अतिरिक्त दो अन्य सदस्य के. एम. पणिक्कर और हृदयनाथ कुंज़रू थे। फ़रवरी 1955 में जब राज्य पुनर्गठन आयोग की टीम राँची पहुँची तो झारखंड पार्टी का एक प्रतिनिधिमंडल भी उनसे मिला और झारखंड राज्य बनाने के लिए ज्ञापन सौंपा। उल्लेखनीय बात यह है कि इस ज्ञापन में जिस झारखंड राज्य की माँग की गई, उसमें बिहार के छोटानागपुर और संथाल परगना क्षेत्र के अलावा पड़ोसी राज्य मध्य प्रदेश, ओडिशा और पश्चिम बंगाल राज्य के आदिवासी क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया।[29] निश्चित रूप से, झारखंड पार्टी की यह माँग एक वृहद आदिवासी राज्य की माँग थी। हालाँकि फ़ज़्ल अली आयोग ने इस माँग को स्वीकार नहीं किया, और यह दलील दी कि बिहार के अन्य राजनीतिक दल इस माँग से सहमत नहीं हैं, और दक्षिणी बिहार को एक अलग प्रांत का दर्जा देने से बिहार की अर्थव्यवस्था पर अत्यंत नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।[30]

तीसरे लोकसभा चुनावों के बाद जयपाल सिंह ने अपनी पार्टी का कॉन्ग्रेस में विलय कर लिया क्योंकि उन्हें लगा कि वे कॉन्ग्रेस में शामिल होकर आदिवासियों के लिए एक अलग राज्य हासिल कर सकते हैं।[31] लेकिन उन्हें इसमें कामयाबी नहीं मिली। इससे दुखी होकर मार्च 1970 में उन्होंने कॉन्ग्रेस से

जयपाल सिंह ने एक पृथक झारखंड राज्य की माँग को ज़्यादा मज़बूती से आगे बढ़ाने के लिए 1 जनवरी, 1950 को झारखंड पार्टी की स्थापना की। इसमें ग़ैर-आदिवासियों को भी शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया।

---

[29] वही : 135.

[30] बलबीर दत्त यह तर्क देते हैं कि जयपाल सिंह ने फ़ज़्ल अली आयोग के सदस्यों से ख़ुद बात करने की ज़हमत नहीं उठायी क्योंकि उनका आयोग एक सदस्य के. एम. पणिक्कर से छत्तीस का आँकड़ा था, और शायद जयपाल सिंह ख़ुद आयोग से मिलते तो उन्हें झारखंड की माँग की प्रासंगिकता को बेहतर तरीक़े से समझा सकते थे. देखें बलबीर दत्त (2017) : 135-36; बहरहाल, अश्विनी कुमार पंकज का यह मानना है कि जब राज्य पुनर्गठन आयोग राँची आया तो श्रीकृष्ण सिंह, कृष्ण वल्लभ सहाय और विनोदानंद झा ने मिलकर जयपाल सिंह को यह ग़लत सूचना दे दी कि उन्हें प्रधानमंत्री से झारखंड के गठन के बारे में चर्चा करने के लिए दिल्ली जाना है. दिल्ली में दो दिन तक रुकने के बाद भी उनकी प्रधानमंत्री से मुलाक़ात नहीं हुई और वे राज्य पुनर्गठन आयोग से भी नहीं मिल पाए. देखें अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 77; साथ ही देखें, शैलेन्द्र महतो (2011) : 164.

[31] आलेख के अगले भाग में कॉन्ग्रेस विलय से संबंधित घटनाक्रम की विवेचना की गई है.

अलग होकर फिर से झारखंड पार्टी को सुगठित करने और झारखंड राज्य के लिए आंदोलन करने का फ़ैसला किया। लेकिन जयपाल सिंह झारखंड आंदोलन को आगे बढ़ाने के अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर पाए और 20 मार्च, 1970 को दिल्ली स्थित निवास स्थान में उनका देहांत हो गया। उनकी मृत्यु का कारण सेरेब्रल हेमरेज (मस्तिष्क में अत्यधिक रक्त-स्राव) था। अगले दिन उनके पैतृक गाँव में उनका दाह संस्कार कर दिया गया। जयपाल सिंह पहले चुनावों से लेकर अपनी मृत्यु तक लोकसभा के सदस्य रहे, और उन्होंने पहले आदिवासी महासभा और फिर झारखंड पार्टी के माध्यम से आदिवासियों को उनके हक़ों के बारे जागरूक करने और सत्ता की दहलीज़ तक उनकी माँगों को पहुँचाने का कार्य किया। उनके समकालीन विभिन्न दलों के नेताओं ने उनके इस योगदान को स्वीकार किया।[32] आदिवासियों के अधिकारों के लिए अपने लगातार संघर्ष के कारण ही ये उनके बीच 'मरङ गोमके' या सर्वोच्च (महान) नेता के रूप में प्रसिद्ध हुए।

II. कॉन्ग्रेस और गांधीवादी दर्शन की आलोचना : आदिवासी केंद्रित वैकल्पिक राजनीति और चिंतन

जब जयपाल सिंह राजनीति में सक्रिय हुए, उस समय देश में औपनिवेशिक शासन के ख़िलाफ़ आंदोलन चल रहा था, और भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस उस आंदोलन के मुख्य मंच की भूमिका अदा कर रही थी। लेकिन जयपाल सिंह का कॉन्ग्रेस के साथ हमेशा ही काफ़ी जटिल संबंध रहा। आज़ादी के आंदोलन के दौरान जयपाल सिंह का कॉन्ग्रेस नेताओं, विशेषकर बिहार कॉन्ग्रेस के नेताओं के साथ छत्तीस का आँकड़ा रहा क्योंकि जहाँ जयपाल सिंह अलग झारखंड राज्य के लिए प्रतिबद्ध थे, वहीं बिहार कॉन्ग्रेस के नेता बिहार के विभाजन के सख़्त ख़िलाफ़ थे। जयपाल सिंह 1963 में कॉन्ग्रेस में शामिल हुए लेकिन वे अपने मूल लक्ष्य अर्थात् झारखंड राज्य के निर्माण को हासिल करने में नाकाम रहे, और राजनीतिक पद देने के मामले में भी कॉन्ग्रेस ने जयपाल सिंह को कोई ख़ास तव्वजो नहीं दी।

अपने राजनीतिक जीवन के आरंभ में ही जयपाल सिंह ने कॉन्ग्रेस की तीखी आलोचना की, और उन्होंने झारखंड में बाहरी लोगों (ग़ैर-आदिवासी, जिन्हें जयपाल सिंह ने 'दिकू' कहा) के बढ़ते वर्चस्व का मुद्दा उठाया। मसलन, उन्होंने टिस्को (टाटा आयरन ऐंड स्टील कंपनी) के अधिकारियों की यह कहते हुए आलोचना की कि उन्होंने बिहार सरकार के आदेश से महत्त्वपूर्ण पदों पर ग़ैर-आदिवासी अधिकारियों को नियुक्त कर दिया है। कई सभाओं में उन्होंने यह दावा भी किया कि उन्हें (1937 में गठित) कॉन्ग्रेस मंत्रिमंडल में मंत्री पद की पेशकश की गई थी, जिसे उन्होंने ठुकरा दिया।[33] जून 1939 में जयपाल सिंह एक प्रतिनिधिमंडल लेकर राज्य के मुख्यमंत्री डॉ. श्रीकृष्ण सिंह से मिले, लेकिन उन्हें यह लगा

[32] बलबीर दत्त (2017) : 199.

[33] वही : 54.

कि मुख्यमंत्री आदिवासियों की समस्याओं को लेकर गंभीर नहीं हैं।[34] ग़ौरतलब है कि जयपाल सिंह द्वारा कॉन्ग्रेस के प्रस्ताव को ठुकराने, और उनके द्वारा बिहार के एक अंग्रेज़ गवर्नर की सलाह पर आदिवासियों के हितों की राजनीति आरंभ करने को कॉन्ग्रेस नेताओं ने अंग्रेज़ों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का सहायक बनने के रूप में देखा। इसलिए बिहार कॉन्ग्रेस के नेताओं ने जयपाल सिंह के संगठन और उसके प्रभाव को कमज़ोर करने का प्रयास किया। 1939 में जयपाल सिंह और राजेंद्र प्रसाद के बीच हुए पत्राचार से कुछ रोचक बातें सामने आती हैं। आदिवासी महासभा का अध्यक्ष बनने के बाद 14 जून, 1939 को राजेंद्र प्रसाद को लिखे पत्र में जयपाल सिंह ने यह लिखा कि 'जब मैं राँची में आपसे मिला था तो मैंने आपके सामने आदिवासी सभा के लक्ष्यों और उद्देश्यों को रखा था। मैं आपको यह आश्वस्त करना चाहता था कि आदिवासी सभा के लक्ष्य और भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के सिद्धांत में समरसता है। छोटानागपुर और संथाल परगना के आदिवासी और ग़ैर-आदिवासी सभी लोग संपूर्ण भारत और अपने गृह क्षेत्र के लिए पूर्ण स्वराज चाहते हैं।' राजेंद्र प्रसाद ने 3 जुलाई, 1939 को इस पत्र का जवाब दिया, जिसमें अन्य बातों के अलावा उन्होंने यह भी लिखा कि 'आदिवासी सभा ने कॉन्ग्रेस के उम्मीदवारों के ख़िलाफ़ अपने उम्मीदवारों को उतारने का फ़ैसला किया, ऐसे में मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि यह भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के साथ समरसता का दावा कैसे कर सकती है।'[35]

आदिवासी महासभा के भीतर ईसाई आदिवासी और ग़ैर-ईसाई आदिवासी का सवाल पैदा हुआ। अश्विनी कुमार पंकज जैसे कुछ विद्वान यह मानते हैं कि इसके पीछे कॉन्ग्रेस के बिहार के नेताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। ईसाई और ग़ैर-ईसाई आदिवासी का विवाद होने के कारण आदिवासी महासभा के एक वरिष्ठ सदस्य ठेबले उराँव ने 'सनातन आदिवासी महासभा' नामक संगठन के स्थापना की घोषणा की और यह दावा किया कि यह ग़ैर-ईसाई आदिवासियों का संगठन है।[36] 1940 में कॉन्ग्रेस का वार्षिक अधिवेशन 17-19 राँची के

---

[34] वही : 56; जयपाल सिंह ने 24 मई, 1939 को राजेंद्र प्रसाद को यह लिखा कि 'मैंने सार्वजनिक रूप से बार-बार यह घोषणा की है कि भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस दुखद रूप से पिछड़े क्षेत्रों के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने में नाकाम रही है. इसने इन क्षेत्रों की उपेक्षा की है. इसने शासन व्यवस्था में इन्हें कोई महत्त्व नहीं दिया है, और इस तरह इसने स्वराज, सत्य और अहिंसा के बुनियादी सिद्धांतों का उल्लंघन किया है. हम सभी पूर्ण स्वराज चाहते हैं. (लेकिन) बिहार सरकार आदिवासियों के आत्म निर्णयों को नष्ट करने के लिए हर कदम उठा रही है.' यह पत्र वाल्मीकी चौधरी द्वारा संपादित राजेंद्र प्रसाद के पत्रों और अन्य दस्तावेज़ों के संकलन में शामिल है. देखें वाल्मीकी चौधरी (1984) : 75.

[35] जयपाल सिंह और राजेंद्र प्रसाद दोनों के ही पत्र वाल्मीकी चौधरी द्वारा संपादित राजेंद्र प्रसाद के पत्रों और अन्य दस्तावेज़ों के संकलन से लिए गये हैं. विस्तार के लिए देखें वाल्मीकी चौधरी (1984) : 128; 142.

[36] अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 62; कॉन्ग्रेस के भीतर जयपाल सिंह के बढ़ते राजनीतिक क़द को लेकर चर्चा हो रही थी. कॉन्ग्रेस नेताओं के भीतर जयपाल सिंह द्वारा कॉन्ग्रेस के साथ काम करने के प्रस्ताव को ठुकराने को लेकर नाराज़गी भी थी. इस संदर्भ में अश्विनी कुमार पंकज आदिवासी क्षेत्रों में काम करने वाले सुप्रसिद्ध गांधीवादी कार्यकर्ता ठक्कर बापा द्वारा 27 मार्च, 1939 को राजेंद्र प्रसाद को लिखे गये पत्र का भी उल्लेख करते हैं. इस पत्र में ठक्कर बापा जयपाल सिंह और आदिवासी महासभा के विकल्प के रूप में एक ऐसी समिति प्रस्तावित करते हैं जो कार्यकर्ताओं के ज़रिए चुपचाप काम करे, तथा सीधे तौर पर इसका काम राजनीति करना नहीं, बल्कि लोगों का विश्वास जीतना हो. उन्होंने कॉन्ग्रेस के नेतृत्व वाली तत्कालीन

निकट रामगढ़ में हुआ। जयपाल सिंह ने अपनी आत्मकथा[37] में यह लिखा है कि 'राजेंद्र बाबू ने निर्णय लिया कि कॉन्ग्रेस का अधिवेशन रामगढ़ में हो जिससे कि गांधीजी, नेहरू, पटेल जैसे सभी बड़े नेता आएँ, और हमारे आंदोलन को कुचल दें।'[38] हालाँकि किसी अन्य स्वतंत्र स्रोत से इस बात की पुष्टि नहीं होती कि रामगढ़ में कॉन्ग्रेस का अधिवेशन आयोजित करने के पीछे मुख्य मंशा जयपाल सिंह के प्रभाव को कम करना ही था।[39] लेकिन यह भी सच है कि ठेबले उराँव के नेतृत्व वाली सनातन आदिवासी सभा का कॉन्ग्रेस नेताओं के साथ निकट संबंध था, और उन्होंने कॉन्ग्रेस के अधिवेशन के एक दिन पहले एक जनसभा बुलाई और यह कहा कि जयपाल सिंह ग़ैर-ईसाई आदिवासियों के प्रतिनिधि नहीं हैं, और जयपाल सिंह को अलगाववादी विचार फैलाकर आदिवासियों को गुमराह नहीं करना चाहिए।[40] यह भी उल्लेखनीय है कि राजेंद्र प्रसाद ने राँची में कैथोलिक बिशप से मिलकर जयपाल सिंह के इस दावे का उल्लेख किया कि उन्हें मिशनरी चर्च का समर्थन प्राप्त है। प्रसाद ने चर्च को राजनीति से दूर रहने और किसी भी राजनीतिक दल का समर्थन न करने की सलाह दी।[41]

जयपाल सिंह ने गांधी का विरोध किया, और 1940 में रामगढ़ अधिवेशन में भाग लेने के लिए जिस दिन गांधी राँची आए, उस दिन आदिवासी महासभा ने राँची बंद का आयोजन किया। जयपाल सिंह ने अपनी आत्मकथा में यह दावा किया है कि 'गांधीजी और कांग्रेसी नेताओं के स्वागत में समूचा राँची बंद रहा। इसके लिए गांधीजी ने कभी मुझे माफ़ नहीं किया।'[42] दूसरी ओर, उनके जीवनीकार बलबीर दत्त का यह मानना है कि आदिवासी महासभा द्वारा आयोजित बंद तक़रीबन निष्प्रभावी रहा, और इसके बारे में किसी भी समाचार-

---

बिहार सरकार से ऐसी संस्था को आर्थिक मदद उपलब्ध कराने का अनुरोध किया. ठक्कर बापा के इस सुझाव के तहत ही 'आदिम जाति सेवक मंडल' का गठन किया गया. देखें, अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 61-62; हालाँकि ठक्कर बापा सीधे तौर पर हिंदू मूल्यों को बढ़ावा देने की बात नहीं करते हैं, लेकिन इसमें संदेह नहीं है कि उनमें ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों को लेकर संदेह की भावना थी, और उन्हें यह लगता था कि मिशनरियों की गतिविधियाँ पृथकतावाद को बढ़ावा दे सकती हैं. उन्होंने मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री रविशंकर शुक्ला को भी ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों का मुक़ाबला करने के लिए भारतीय मूल्यों के प्रसार का सुझाव दिया. शुक्ला ने इस काम के लिए रमाकांत देशपांडे को नियुक्त किया. बाद में, देशपांडे ने सरकारी नौकरी छोड़कर 1952 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की आदिवासी शाखा 'अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम' का गठन किया. देखें कमल नयन चौबे (2019).

[37] जयपाल सिंह की आत्मकथा का शीर्षक *लो बिर सेंदरा* है. यह पारंपरिक अर्थों में आत्मकथा नहीं है, बल्कि छिटपुट संस्मरणों का संग्रह है, जिसे 2004 में रश्मि कात्यायन ने संपादित किया. कात्यायन को यह पांडुलिपि स्टेनलुर्दु स्वामी ने दी थी. पुस्तक में स्टेन ने यह जानकारी दी है कि उन्हें यह पांडुलिपि एक विदेशी शोधकर्ता से मिली थी. पुस्तक में इसकी प्रामाणिकता के बारे में और कोई जानकारी नहीं है. यह अवश्य है कि जयपाल सिंह और जहाँआरा के पुंत्र जयंत जयपाल सिंह द्वारा इसे अनुशंसित करने के कारण इसे काफ़ी हद तक प्रामाणिक माना जाता है. देखें अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 29-30.

[38] रश्मि कात्यायन (2004) : 102; अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 63.

[39] बलबीर दत्त इसे कॉन्ग्रेस नेताओं से जयपाल सिंह की कटुता का एक उदाहरण मानते हैं. देखें बलबीर दत्त (2017) : 73.

[40] अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 63.

[41] इस घटना का उल्लेख राजेंद्र प्रसाद द्वारा बी. एस. जिलानी को 27 जुलाई को लिखी गई चिट्ठी में मिलता है. देखें संतोष कीरो (2018) : 154-56.

[42] रश्मि कात्यायन (2004) : 102; अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 63.

पत्र में कोई उल्लेख नहीं मिलता है।[43] यह भी ग़ौरतलब है कि सुभाष चंद्र बोस के कॉन्ग्रेस से अलग होकर फ़ॉरवर्ड ब्लॉक नामक संगठन बनाने पर जयपाल सिंह ने उनका समर्थन किया। बोस ने रामगढ़ कॉन्ग्रेस अधिवेशन के दो दिन पहले रामगढ़ में ही ब्रिटिश विरोधी रैली का आयोजन किया। इसमें जयपाल सिंह ने उनका साथ दिया, और एक सफल सभा हुई जिसकी अध्यक्षता जयपाल सिंह ने की। हालाँकि द्वितीय विश्व युद्ध के ज़ोर पकड़ने के बाद सुभाष चंद्र बोस और जयपाल सिंह के रास्ते अलग हो गये। बोस अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ संगठित संघर्ष करने के लिए देश से बाहर चले गये, और उन्होंने आज़ाद हिंद फ़ौज के माध्यम से देश की आज़ादी के संघर्ष को आगे बढ़ाया। दूसरी ओर, जयपाल सिंह आदिवासियों के हितों की सुरक्षा के लिए अलग-अलग तरीक़े से काम करते रहे। उन्हें यह लगा कि युद्ध के समय ब्रिटेन को सहायता की आवश्यकता है, इसलिए उन्होंने आदिवासी युवाओं को सेना में भर्ती करने का अभियान भी चलाया।[44] उन्हें यह उम्मीद थी कि अंग्रेज़ सरकार उनकी इस सहायता के बदले आदिवासियों के मुद्दों और उनकी माँगों को गंभीरता से लेगी।

वे गांधी के चिंतन और पद्धति को भी संदेह की नज़र से देखते थे। उन्हें यह लगता था कि गांधी के विचार, ख़ासतौर पर उनके द्वारा अहिंसक आंदोलन पर अत्यधिक ज़ोर देना और हिंदूवादी प्रतीकों का प्रयोग आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी या दिकू लोगों के प्रभाव को बढ़ा सकता है, और इस तरह आदिवासी संस्कृति के लिए ख़तरा पैदा कर सकता है।

जयपाल सिंह के कॉन्ग्रेस से लगातार टकराव का कारण सिर्फ़ बिहार के नेताओं के प्रति उनके संदेह की भावना ही नहीं थी, बल्कि वे गांधी के चिंतन और पद्धति को भी संदेह की नज़र से देखते थे। उन्हें यह लगता था कि गांधी के विचार, ख़ास तौर पर उनके द्वारा अहिंसक आंदोलन पर अत्यधिक ज़ोर देना और हिंदूवादी प्रतीकों का प्रयोग आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी या दिकू लोगों के प्रभाव को बढ़ा सकता है, और इस तरह आदिवासी संस्कृति के लिए ख़तरा पैदा कर सकता है।[45] संविधान सभा में शराबबंदी पर हो रही बहस में अधिकांश सदस्यों ने इस प्रकार के प्रतिबंध का समर्थन किया। इसके पीछे राष्ट्रीय आंदोलन के मूल्यों और महात्मा गांधी के विचारों का प्रभाव काम कर रहा था। महात्मा गांधी ने शराब सेवन को एक सामाजिक बुराई मानते हुए इसे ख़त्म करने के लिए लगातार प्रयास किया। आदिवासी क्षेत्रों में काम करने वाले कई गांधीवादी कार्यकर्ताओं ने भी इसी आदर्श से प्रेरणा ली और उन्होंने लगातार यह

---

[43] बलबीर दत्त (2017) : 63.

[44] वही.

[45] इस संदर्भ में जयपाल सिंह के विचारों के लिए देखें जयपाल सिंह मुंडा (2017; प्रथम प्रकाशन 2 जून, 1940).

प्रयास किया कि आदिवासी शराब पीने की आदत को छोड़ दें।[46] इस विषय में संविधान सभा की बहस में जयपाल सिंह ने अपना विचार रखते हुए यह कहा कि आदिवासी समुदायों में शराब का प्रचलन परंपरागत है। आदिवासी क्षेत्रों में चावल से बनी हल्की शराब (जिसे झारखंड में हंडिया कहा जाता है) हर धार्मिक अनुष्ठान में उपयोग में लायी जाती है। इसलिए यदि शराबबंदी के दायरे में इसे भी लाया जाएगा तो यह देश के सबसे प्राचीन लोगों के धार्मिक अधिकारों में हस्तक्षेप होगा।[47] हालाँकि यह भी सच है कि आदिवासी क्षेत्र के कुछ सदस्यों ने उनकी बात का विरोध करते हुए यह कहा कि सभी आदिवासी शराब नहीं पीते हैं। आख़िरकार शराबबंदी को संविधान के नीति-निदेशक तत्त्व के रूप में अनुच्छेद 47 में शामिल किया गया।[48] इसका अर्थ यह है कि संविधान सभा ने शराब पीने को ग़ैर-क़ानूनी कार्य के रूप में स्वीकार नहीं किया, बल्कि इसे एक ऐसे आदर्श के रूप में देखा जिसे हासिल करने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए।

जयपाल सिंह ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुए तीन संसदीय चुनावों में कॉन्ग्रेस के ख़िलाफ़ चुनाव लड़ा और वे लगातार अलग झारखंड राज्य की माँग उठाते रहे। हालाँकि 1963 आते-आते जयपाल सिंह को यह लगने लगा कि उनके पास इतना समर्थन नहीं है कि वे केंद्र सरकार को झारखंड राज्य का गठन करने के लिए मजबूर कर सकें, और न ही उन्होंने अपनी पार्टी को इस मुद्दे पर ज़ोरदार आंदोलन करने के लिए प्रेरित किया। धीरे-धीरे पार्टी के जनाधार में भी कमी आई। जहाँ 1952 में पार्टी को 7.66 लाख और 1957 में 7.26 लाख वोट मिले थे, वहीं 1962 में इसके वोटों की संख्या 4.32 लाख रह गई थी।[49] इसी तरह, जहाँ 1952 और 1957 में इसे बिहार विधानसभा में क्रमशः 33 और 34 सीटें मिली थीं, वहीं 1962 में सीटों की संख्या घटकर 22 रह गयी। इसका नतीजा यह हुआ कि जयपाल सिंह ने कॉन्ग्रेस के साथ विलय करने का फ़ैसला किया। 1963 में कॉन्ग्रेस में झारखंड पार्टी का विलय हो गया। कई लोगों ने जयपाल सिंह पर झारखंड आंदोलन को बेचने का आरोप भी लगाया।[50] यह भी ग़ौरतलब है कि जब जयपाल सिंह ने कॉन्ग्रेस में अपनी पार्टी के विलय का फ़ैसला किया तो

---

[46] डेविड हार्डीमन के अनुसार गांधी द्वारा शाकाहार और शराबंदी पर ज़ोर देना आदिवासियों की जीवनशैली के अनुरूप नहीं था, और यह अंग्रेज़ों द्वारा बाहरी पहचान थोपे जाने की तरह ही था. देखें डेविड हार्डीमन (2003) : 144-46.

[47] देखें, रामचंद्र गुहा (2007) : 116; असल में, जयपाल सिंह ने राजनीति में प्रवेश करने के बाद 20 जनवरी, 1939 को आदिवासी महासभा के सम्मेलन को संबोधित करते हुए भी यह कहा कि आदिवासियों के उत्सवों में शराब की भूमिका को स्वीकार किया जाता है, और इसलिए आदिवासियों के दृष्टिकोण से हिंदू और मुस्लिम राजनेताओं द्वारा इस संदर्भ में दखलंदाज़ी करने वाला क़ानून बनाना एक मूक अल्पसंख्यक समूह के साथ अन्याय करने की तरह है. देखें जयपाल सिंह मुंडा (1917 प्रथम प्रकाशन 20 जनवरी, 1939) : 114; ग़ौरतलब है कि जयपाल सिंह ने सिर्फ़ आज़ादी के संघर्ष के दौरान ही गांधी की राजनीति से ख़ुद को दूर नहीं रखा था, बल्कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कॉन्ग्रेस सांसद के रूप में भी उन्होंने गांधी के अहिंसा के सिद्धांत की आलोचना की. बलबीर दत्त (2016) : 186-189.

[48] बलबीर दत्त (2017) : 112-113.

[49] वही : 146-47.

[50] अनुज कुमार सिन्हा (2013) : 34-35.

इग्नेस कुजूर, थियोडोर सुरीन, एनई होरो, और हरिहरनाथ शाहदेव ने विलय विरोधी झारखंड पार्टी बना ली थी।[51] जयपाल सिंह को यह उम्मीद थी कि कॉन्ग्रेस से जुड़कर वे आदिवासियों के लिए एक पृथक राज्य की माँग को पूरा कर सकते हैं। हालाँकि कॉन्ग्रेस से जुड़ने के बाद उनकी ये उम्मीदें पूरी नहीं हुईं।[52] लेकिन उनका यह भरोसा बना रहा कि कॉन्ग्रेस झारखंड राज्य का निर्माण करने के उनके लक्ष्य को पूरा करेगी। जब 1966-67 में उनके कुछ समर्थकों ने झारखंड पार्टी को फिर से सक्रिय करने पर ज़ोर दिया तो उन्होंने इस माँग को नकार दिया और ख़ुद को सौ फ़ीसद कांग्रेसी क़रार दिया।[53]

कॉन्ग्रेस से जुड़ने के बाद जयपाल सिंह की लोकप्रियता में गिरावट आई। इसका एक प्रमुख प्रमाण यह है कि 1967 के लोकसभा चुनावों में वे मात्र 5 हज़ार वोटों के अंतर से जीते।[54] जयपाल सिंह की लोकप्रियता में गिरावट का एक बड़ा कारण परिवारवाद को बढ़ावा देना भी था। यह माना जाता है कि झारखंड पार्टी का कॉन्ग्रेस में विलय करने के जयपाल सिंह के फ़ैसले के पीछे उनकी और उनकी पत्नी जहाँआरा की सत्ता की राजनीति से जुड़ने की महत्त्वाकांक्षा की भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।[55] जयपाल सिंह को भी 3 सितम्बर, 1963 को बिहार सरकार के मंत्रिमंडल में सम्मिलित किया गया, और उप-मुख्यमंत्री बनाया गया। लेकिन अगले एक महीने के घटनाक्रम के कारण उन्हें मंत्री पद से हटना पड़ा।[56]

कॉन्ग्रेस द्वारा झारखंड राज्य के निर्माण की दिशा में कोई ठोस पहल न करने के कारण

---

[51] अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 79; साथ ही देखें, डॉ. गिरधारी राम गौंझू 'गिरिराज' (2001) : 155.

[52] कॉन्ग्रेस और झारखंड पार्टी के बीच विलय को लेकर जो लिखित समझौता हुआ था, उसमें झारखंड राज्य के निर्माण के बारे में कोई उल्लेख नहीं था. बलबीर दत्त (2017) : 50-53;

[53] वही : 178-79.

[54] वही : 167; संतोष कीरो के अनुसार, जब इस चुनाव के दौरान जयपाल सिंह विभिन्न स्थानों पर चुनाव प्रचार करने गये तो कई आदिवासियों ने उनके पूछा की 'मुर्गा (झारखंड पार्टी का चुनाव चिह्न) कहाँ गया?' जयपाल सिंह को कॉन्ग्रेस में शामिल होने के अपने फ़ैसले को सही साबित करने में काफ़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा. देखें संतोष कीरो (2018) : 142-46.

[55] जयपाल सिंह के कई जीवनीकार यह भी मानते हैं कि झारखंड पार्टी के कॉन्ग्रेस में विलय में उनकी दूसरी पत्नी जहाँआरा की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी, जो आगे चलकर राज्यसभा सदस्य और केंद्र में इंदिरा गांधी की सरकार में उप-मंत्री भी बनीं. जहाँआरा पहली बार 1957 में झारखंड पार्टी की ओर से राज्यसभा की सदस्य बनीं. उस समय पार्टी के कार्यकर्ता यह चाहते थे कि हरमन लकड़ा को राज्यसभा भेजा जाए, किन्तु जयपाल सिंह ने उनके स्थान पर अपनी पत्नी को राज्यसभा भेजा. जहाँआरा को दोबारा 1964 में कॉन्ग्रेस ने राज्यसभा में भेजा. जहाँआरा की मृत्यु 80 वर्ष की उम्र में 2004 में हुई. उल्लेखनीय बात यह है कि वर्ष 2000 में जब झारखंड राज्य बना तो जहाँआरा को राज्य की पहली मुख्यमंत्री बनाने की भी चर्चा हुई. हालाँकि वे मुख्यमंत्री नहीं बन पाईं. बलबीर दत्त (2017) : 246-53.

[56] जब वे उप-मुख्यमंत्री बने उस समय विनोदानंद झा मुख्यमंत्री थे, लेकिन एक महीने के भीतर कामराज योजना के कारण उन्होंने मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया और उनके स्थान पर कृष्ण बल्लभ सहाय राज्य के मुख्यमंत्री बने. इस बीच झारंखड पार्टी से कॉन्ग्रेस में सम्मिलित हुए अधिकांश विधायकों ने झारखंड पार्टी के पूर्व नेता और जयपाल सिंह के निकट सहयोगी सुशील कुमार बागे को अपना समर्थन दे दिया. इसलिए कृष्ण बल्लभ सहाय ने जयपाल सिंह के स्थान पर सुशील कुमार बागे को मंत्रिमंडल में शामिल कर लिया. देखें बलबीर दत्त (2017) : 244-45; बलबीर दत्त यह मानते हैं कि कॉन्ग्रेस ने कभी भी जयपाल सिंह को उप-मुख्यमंत्री या मंत्री बनाने का वायदा नहीं किया था, लेकिन अश्विनी कुमार पंकज कॉन्ग्रेस की आलाकमान की ओर से जयपाल सिंह को इस तरह का वायदा करने का उल्लेख करते हैं. देखें अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 79.

जयपाल सिंह की कॉन्ग्रेस से नाराज़गी बढ़ती गयी। मई 1969 में वे युरोप और अफ़्रीक़ा की दो माह की लंबी यात्रा पर गये थे। इसी दौरान उन्होंने पुरानी झारखंड पार्टी के महासचिव गोपालदास मुंजाल को भेजे गये एक पत्र के साथ कॉन्ग्रेस पार्टी से इस्तीफ़े का पत्र भी संलग्न कर दिया। हालाँकि उन्होंने कॉन्ग्रेस पार्टी से इस्तीफ़ा दे दिया था, और वे झारखंड पार्टी को पुनर्जीवित करना चाहते थे, किन्तु उन्होंने कॉन्ग्रेस की लोकसभा सदस्यता से इस्तीफ़ा नहीं दिया।[57] लेकिन यह तय था कि जयपाल सिंह कॉन्ग्रेस में अपनी स्थिति और झारखंड राज्य निर्माण न होने के कारण कॉन्ग्रेस नेतृत्व और केन्द्र सरकार से काफ़ी क्षुब्ध थे। 13 मार्च, 1970 को उन्होंने राँची के बरडेला (बहूबाज़ार) में एक महत्त्वपूर्ण जनसभा को संबोधित किया। जयपाल सिंह ने अपना भाषण नागपुरी में दिया और कहा कि कॉन्ग्रेस पार्टी में झारखंड पार्टी का विलय करना उनकी बहुत बड़ी ग़लती थी। उनके अनुसार, वे यह चाहते थे कि कॉन्ग्रेस के भीतर रहकर अलग झारखंड प्रांत के लिए दबाव डाला जाए। उन्होंने यह कहा कि 'कॉन्ग्रेस ने धोखा दिया। झारखंड पार्टी का कॉन्ग्रेस में विलय करना मेरे जीवन की सबसे बड़ी भूल थी। मैं झारखंड पार्टी में लौटूँगा और अलग झारखंड प्रांत के लिए आंदोलन करूँगा।'[58] जयपाल सिंह ने 'जय झारखंड' के साथ अपने भाषण का समापन किया।[59]

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि इस सभा के एक हफ़्ते बाद ही 20 मार्च 1970 को उनकी मृत्यु हो गयी। निश्चित रूप से कॉन्ग्रेस के साथ उनका संबंध उथल-पुथल भरा हुआ रहा, और इसकी बुनियाद में आदिवासी हितों की सुरक्षा की उनकी चिंता प्रमुख थी। उन्होंने इस लक्ष्य से प्रेरित होकर पहले आदिवासी महासभा और फिर झारखंड पार्टी के माध्यम से काम किया, और फिर कॉन्ग्रेस के साथ जुड़े। हालाँकि जिस दौर में जयपाल सिंह क्षेत्रीय दल के माध्यम से आदिवासियों के हितों के संरक्षण की कोशिश कर रहे थे, उस समय पूरे देश में कॉन्ग्रेस का वर्चस्व था, और विपक्षी दल बिखरे हुए थे। जयपाल सिंह ने विपक्षी दलों का गठजोड़ की कोशिश नहीं की, बल्कि उन्होंने 1951 में इस संदर्भ में जयप्रकाश नारायण के आह्वान की भी उपेक्षा की। कॉन्ग्रेस के साथ उनका संबंध जटिलताओं से भरा रहा, लेकिन

---

[57] जयपाल सिंह के कॉन्ग्रेस से इस्तीफ़े से झारखंड की राजनीति पर उस समय कोई ख़ास प्रभाव नहीं पड़ा. जयपाल सिंह का साथ छोड़ चुके उनके पुराने साथ सुशील कुमार बागे ने यह कहा कि शायद जयपाल सिंह के इस्तीफ़ा देने का मुख्य कारण यह है कि उनकी पत्नी जहाँआरा को कॉन्ग्रेस पार्टी द्वारा राज्यसभा का टिकट नहीं दिया गया था. यह भी ग़ौरतलब है कि जयपाल सिंह द्वारा झारखंड पार्टी का कॉन्ग्रेस में विलय करने के बाद बहुत सारी झारखंड नामधारी पाटियाँ राजनीतिक अखाड़े में कूद चुकी थीं. इनमें से कुछ पार्टियों का गठन जयपाल सिंह के पूर्व सहयोगियों ने ही किया था. ऐसे अधिकांश गुटों के नेताओं ने जयपाल सिंह के निर्णय की यह कहते हुए तीखी आलोचना की कि जयपाल सिंह ने झारखंड आंदोलन के साथ विश्वासघात किया था, और उन्होंने पद और अन्य प्रलोभनों की चाह में कॉन्ग्रेस का दामन थामा था. देखें, बलबीर दत्त (2017) : 183-85.

[58] अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 83; शैलेन्द्र महतो (2011) : 179; हालाँकि संतोष कीरो इस प्रकार की किसी जनसभा का उल्लेख नहीं करते, बल्कि वे जयपाल सिंह की झारखंड पार्टी के पुराने सहयोगी लाल रणविजय नाथ शाहदेव के हवाले से एक अत्यंत गुप्त बैठक का उल्लेख करते हैं, जिसमें झारखंड पार्टी के नेता ही सम्मिलित हुए थे. देखें, संतोष कीरो (2018) : 148.

[59] बलबीर दत्त (2017) : 196.

इसमें संदेह नहीं है कि उन्होंने कॉन्ग्रेस के देश के सभी समुदायों की आवाज़ होने के दावे को आदिवासियों के सदंर्भ में सशक्त चुनौती प्रदान की।

III. आदिवासी अस्मिता, राष्ट्रवादी रूपरेखा और जयपाल सिंह मुंडा

जयपाल सिंह ने हमेशा ही इस बात पर बल दिया कि आदिवासियों की अस्मिता का सम्मान हो, उन्हें समुचित प्रतिनिधित्व मिले तथा ख़ुद आदिवासी ही अपने यहाँ की प्रशासन व्यवस्था देखें, और संसाधनों का प्रबंधन करें। इसीलिए वे आदिवासियों के लिए एक पृथक राज्य का गठन करना चाहते थे। लेकिन यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है कि क्या जयपाल सिंह आदिवासियों के लिए एक ऐसा राज्य बनाना चाहते थे जो शेष भारत से पूरी तरह अलग हो? क्या वे आदिवासी अस्मिता की बात करते हुए आधुनिक सभ्यता के विभिन्न आयामों अर्थात आधुनिक शिक्षा, आधुनिक तकनीक आदि की भी मुख़ालफ़त करते थे? उन पर अक्सर ईसाई मिशनरियों के निकट होने या उनका एजेंडा आगे बढ़ाने का आरोप भी लगा, ऐसे में यह भी एक महत्त्वपूर्ण सवाल है कि आख़िर उन्होंने धर्म के आधार पर आदिवासियों के विभाजन को किस रूप में देखा?

जयपाल सिंह ने कॉन्ग्रेस की प्रभुत्वशाली राष्ट्रीय राजनीति से भिन्नता रखने वाले समूहों से राजनीतिक तालमेल बनाने का प्रयास किया, और इसी संदर्भ में मुस्लिम लीग से भी उनकी निकटता बढ़ी। कॉन्ग्रेस के विरोध और अपने मुख्य आधार (मुस्लिम लीग के संदर्भ में मुस्लिम) के कल्याण, ज़्यादा प्रतिनिधित्व और अन्य समूहों पर अविश्वास ने मुस्लिम लीग को राष्ट्रीय आंदोलन से अलग एक पृथकतावादी आंदोलन चलाने के लिए प्रेरित किया, और 1940 के लाहौर अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के लिए एक पृथक देश पाकिस्तान की माँग से संबंधित प्रस्ताव पारित कर दिया था। आदिवासी महासभा पहले से ही राष्ट्रीय आंदोलन को संदेह की दृष्टि से देखती थी, जयपाल सिंह के आगमन के बाद इस संगठन में

जयपाल सिंह ने संविधान सभा की बैठकों में भी आदिवासियों की अस्मिता और हितों के साथ एक राष्ट्र के रूप में भारत को मज़बूत करने पर ज़ोर दिया। आदिवासियों की बुरी स्थिति का उल्लेख करने के साथ ही साथ उन्होंने संविधान सभा और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू पर अपना भरोसा जताया। संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव के बारे में अपने संबोधन में उन्होंने यह बात काफ़ी मुखर रूप से अभिव्यक्त भी की।

यह विश्वास और भी ज़्यादा मज़बूत हो गया कि कॉन्ग्रेस नेतृत्व, और विशेष रूप से बिहार के कांग्रेसी नेता आदिवासियों की भलाई को लेकर गंभीर नहीं हैं, और वे कभी भी आदिवासियों के लिए एक पृथक प्रांत की माँग को स्वीकार नहीं करेंगे। इसलिए कुछ समय के लिए ही सही, लेकिन जयपाल ने भी आदिवासियों की भलाई के लिए न सिर्फ़ अंग्रेज़ सरकार की तरफ़दारी की, बल्कि मुस्लिम लीग से भी अपनी नज़दीकियाँ बढ़ाईं। आदिवासी महासभा का वार्षिक सम्मेलन 8, 9 और 10 मार्च, 1941 को राँची में हुआ जिसमें बंगाल मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि भी शामिल हुए। जयपाल सिंह ने बैठक की अध्यक्षता की और अपने संबोधन में उन्होंने अंग्रेज़ सरकार के युद्ध प्रयासों में सहयोग देने का संकल्प व्यक्त किया और छोटानागपुर क्षेत्र को एक अलग प्रांत बनाने पर बल दिया।[60] इस सम्मेलन को 8 मार्च को अंग्रेज़ी में संबोधित करते हुए जयपाल सिंह ने यह कहा कि :

> मुझे बंगाल में मुस्लिम लीग और वहाँ के आदिवासियों ने इस प्रांत का दौरा करने के लिए आमंत्रित किया है।... मैं इसका ज़िक्र इसलिए कर रहा हूँ ताकि ब्रिटिश सरकार यह जान ले कि शिकवे-शिकायतों के मामले में हम अकेले नहीं हैं। हिंदुओं को यह समझ लेना चाहिए कि मुसलमान और आदिवासी एक सेकेंड के लिए हिंदूराज को बर्दाश्त करने वाले नहीं हैं। हम अपनी धार्मिक निष्ठा और प्रजातीय (नस्लीय) इज़्ज़त के लिए संघर्ष करेंगे।[61]

मुस्लिम लीग के लिए जयपाल सिंह का साथ इसलिए महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इसके माध्यम से न सिर्फ़ कॉन्ग्रेस के सभी भारतीयों के प्रतिनिधित्व के दावे को और ज़्यादा कमज़ोर किया जा सकता था, बल्कि इसके साथ अंग्रेज़ों को भी यह दिखाया जा सकता था कि मुस्लिमों के साथ-साथ अन्य समुदाय भी कॉन्ग्रेस से अलग अपने अधिकारों की माँग कर रहे हैं। जयपाल सिंह और मुस्लिम लीग के बीच राजनीतिक संबंध मज़बूत होता गया। यहाँ तक कि 16 अगस्त, 1946 को मुस्लिम लीग के 'डायरेक्ट ऐक्शन डे' के आह्वान वाले दिन भी जयपाल सिंह कलकत्ता में ही थे, और उन्होंने मुस्लिम लीग के मंच से भाषण देते हुए कॉन्ग्रेस की तीखी आलोचना की तथा आदिवासी-मुस्लिम एकता पर ज़ोर दिया।[62] लेकिन बाद में, इस दिन और

[60] जयपाल सिंह ने अपने भाषण में सवर्ण हिंदुओं के रवैये की आलोचना की तथा इस बात पर ज़ोर दिया कि ग़ैर-ईसाई आदिवासी हिंदू नहीं हैं, और उन्हें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि जनगणना के समय उन्हें हिंदू श्रेणी में सम्मिलित नहीं किया जाए, और यदि ऐसा किया जाता है तो उन्हें इसका विरोध करना चाहिए. देखें, बलबीर दत्त (2017) : 88; जयपाल सिंह का यह कथन इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि अभी भी कई संगठनों द्वारा यह माँग ज़ोर-शोर से उठायी जाती रही है कि जनगणना में आदिवासियों के धर्म को सरना के रूप में दर्ज किया जाए. हाल ही में झारखंड सरकार ने इस संदर्भ में प्रस्ताव भी पारित किया है. 11 नवंबर, 2020 को झारखंड विधानसभा के एकदिवसीय विशेष सत्र में 2021 की जनगणना में सरना धर्म के लिए अलग से कॉलम बनाने का प्रस्ताव आम-सहमति से पारित किया गया. देखें मुकेश रंजन (2020).

[61] बलबीर दत्त (2017) : 88-89; मुस्लिम लीग के साथ इस तरह के नजदीकी संबंध बनाने को लेकर आदिवासी महासभा के कई नेता नाराज भी हुए. इसके एक प्रमुख नेता और जयपाल सिंह के निकट सहयोग एन.एन. रक्षित ने उनसे किनारा कर लिया. देखें बलबीर दत्त (2017) : 90.

[62] बलबीर दत्त (2017) : 102-103; बलबीर दत्त खुफ़िया विभाग की कुछ चिट्ठियों का हवाला देते हुए यह बताते हैं कि

इसके बाद कई दिनों तक होने वाली हिंसा ने जयपाल सिंह को अंदर तक झकझोर दिया और उन्होंने मुस्लिम लीग से अपना संबंध तोड़ लिया।

यहाँ यह याद रखने की आवश्यकता है कि जयपाल सिंह ने कभी भी मुस्लिम लीग की एक अलग देश पाकिस्तान की माँग का समर्थन नहीं किया। 22 मई, 1940 को द *बिहार* हेरॉल्ड में लिखे अपने लेख में उन्होंने यह स्पष्ट विचार रखा कि :

> मुस्लिम पूरी तरह से अलग लोग हैं। अल्पसंख्यक होने के कारण वे यह मानते हैं कि वे एक आहत (उपेक्षा झेलने वाला) पक्ष हैं।...इसमें कोई संदेह नहीं है कि मुस्लिम दुनिया के सबसे कठिन अल्पसंख्यक, और समस्या के रूप हैं। पाकिस्तान हिंदू पुनरुत्थान का निर्माण करेगा... भारत में वर्तमान में महिलाओं की निम्न स्थिति के लिए मुख्य रूप से मोहम्मदवाद (या इस्लाम) जिम्मेदार है।...पाकिस्तान हिंदू महासभा के लिए एक वरदान की तरह होगा।[63]

13 अप्रैल, 1947 को आदिवासी महासभा के वार्षिक सम्मेलन के अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा कि हालाँकि मुस्लिम लीग उनके पृथक्करण के आंदोलन का समर्थन करती आ रही है, तो भी आदिवासी अब उसके बहकावे में नहीं आएँगे। उन्होंने कहा कि वे पाकिस्तान बनाए जाने के पक्ष में नहीं हैं और संविधान सभा का बहिष्कार नहीं करेंगे, जैसा कि मुस्लिम लीग चाहती है।[64]

बाद में, संविधान सभा की बैठकों में भी उन्होंने आदिवासियों की अस्मिता और हितों के साथ एक राष्ट्र के रूप में भारत को मज़बूत करने पर ज़ोर दिया। आदिवासियों की बुरी स्थिति का उल्लेख करने के साथ ही साथ उन्होंने संविधान सभा और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू पर अपना भरोसा जताया। संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव के बारे में अपने संबोधन में उन्होंने यह बात काफ़ी मुखर रूप से अभिव्यक्त भी की। इससे संबंधित बहस में 'एक जंगली, एक

जयपाल सिंह ने मुस्लिम लीग से आर्थिक सहायता भी प्राप्त की थी. देखें, बलबीर दत्त (2017) : 107-109.

[63] जयपाल सिंह (2017ग), प्रथम प्रकाशन 28 मई, 1940); अपने इस लेख में जयपाल सिंह ने 1940 के रामगढ़ कॉन्ग्रेस में स्वागत समिति के अध्यक्ष की हैसियत से डॉ. राजेंद्र प्रसाद द्वारा दिये गए भाषण का उल्लेख किया है. प्रसाद ने आर्यों के बाहर से आने का उल्लेख करते हुए यह कहा था कि आदिवासी आर्यों से अलग हैं और वे दक्षिण-पूर्व और कई द्वीपों में भी फैले हुए थे. प्रसाद का ज़ोर इस बात पर था कि विशेषज्ञ यह मानते हैं कि बिहार के लोगों का रंग, चेहरे का हाव-भाव, शारीरिक संरचना इत्यादि आदिवासियों के क़रीब है, वहीं आदिवासियों ने बिहार की संस्कृति और भाषा को काफ़ी हद तक अपनाया है. जयपाल सिंह इस पूरे वर्णन को आदिवासी स्थान के सिद्धांत के रूप में पेश करते हैं, और उनके अनुसार प्रसाद का मुख्य लक्ष्य छोटानागपुर क्षेत्र के आदिवासियों की बुनियादी माँगों (जिसमें अलग प्रांत का निर्माण सर्वप्रमुख था) को हल्का बनाना था. जयपाल सिंह मानते हैं कि बिहारी या बंगाली लोग इस तरह के वर्णन को पसंद नहीं करेंगे, हालाँकि आदिवासी महासभा अपनी पुरानी माँग में संशोधन करते हुए ज़्यादा बड़े आदिवासी स्थान की माँग करेगी, जिसमें बिहार, ओडिशा से लेकर बंगाल तक के क्षेत्र सम्मिलित होंगे. अपने इस लेख में जयपाल सिंह यह भी उल्लेख करते हैं कि हिंदू महासभा के लोग आदिवासी स्थान को हिंदुस्थान में बदलना चाहते हैं. वही.

[64] बलबीर दत्त (2017) : 116.

आदिवासी के रूप में' अपना विचार रखते हुए जयपाल सिंह ने कहा :

> मैं इस प्रस्ताव की क़ानूनी पेचीदगियों को पूरी तरह समझने में असमर्थ हूँ। लेकिन अपनी सामान्य समझ के आधार पर मुझे यह लगता है कि हममें से प्रत्येक को आज़ादी के रास्ते पर आगे बढ़ना चाहिए और मिलकर संघर्ष करना चाहिए। सर, भारतीय लोगों में से यदि किसी एक समूह के साथ कुत्सित तरीक़े से बरताव किया जाता रहा है, तो वे मेरे लोग हैं। पिछले 6,000 वर्षों से उनके साथ अपमानजनक व्यवहार किया जा रहा है और उनकी उपेक्षा की जा रही है। सिंधु घाटी सभ्यता का इतिहास, जिसका एक बच्चा मैं भी हूँ, यह दिखाता है कि बाहर से आए नये लोगों ने मेरे लोगों को सिंधु घाटी से बाहर निकाल जंगलों में खदेड़ दिया। मैं यह भी मानता हूँ कि आप में से अधिकांश लोग बाहर से आए घुसपैठिये हैं। मेरे लोगों का सम्पूर्ण इतिहास ग़ैर-आदिवासी लोगों द्वारा शोषण और वंचना का इतिहास है, आदिवासी अपनी बग़ावत और अव्यवस्था पैदा करके इसमें बाधा डालते आये हैं। इसके बावजूद, मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों पर भरोसा करता हूँ, मैं आप सबके शब्दों पर विश्वास करता हूँ कि अब हम एक नये अध्याय की शुरुआत करने जा रहे हैं, यह स्वतंत्र भारत का एक नया अध्याय है जहाँ अवसर की समानता है और जहाँ किसी की उपेक्षा नहीं की जाएगी।[65]

असल में, जयपाल सिंह अपने क्षेत्र (छोटानागपुर क्षेत्र) से आगे बढ़ते हुए समस्त आदिवासी क्षेत्रों की एक पहचान का निर्माण करना चाहते थे और उसे व्यापक भारतीय राष्ट्र की एक ऐसी इकाई बनाना चाहते थे जो स्थानीय स्तर पर विकास करते हुए देश की मज़बूती में योगदान दे। 1939 में आदिवासी महासभा के अधिवेशन में अपने दूसरे संबोधन में भी जयपाल सिंह ने यह कहा कि भले ही इस समय वे मुख्य रूप से छोटानागपुर क्षेत्र के आदिवासियों के हितों की बात कर रहे हैं, किन्तु वे किसी संकुचित या पृथक झारखंडी या आदिवासी अस्मिता के हिमायती नहीं हैं। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि तात्कालिक अनिवार्यताओं के कारण आंदोलन अपनी पूरी ताक़त छोटानागपुर में लगा रहा है, लेकिन इस आंदोलन की भावना ज़्यादा व्यापक है।[66] वे यह चाहते थे कि देश के अन्य इलाक़ों में रह रहे आदिवासियों को भी एक संगठन की छतरी के नीचे लाया जाए। एक पृथक आदिवासी राज्य की उनकी परिकल्पना का मूल आधार यह था कि एक ऐसे राज्य में जहाँ आदिवासी अल्पसंख्यक के रूप में होते हैं, वहाँ नेताओं या मंत्रियों को आदिवासियों के हितों पर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि आदिवासियों का कोई राजनीतिक प्रभाव नहीं होता है... उनके हितों की जानबूझकर क़ुर्बानी दी जाती है या उनकी उपेक्षा की जाती है। एक ऐसी विधायिका आदिवासियों के हितों को वास्तविक रूप में नहीं समझ सकती है, जिसके सदस्यों के एक बड़े भाग का आदिवासियों के जीवन से कोई परिचय ही न हो।[67] इसलिए उन्होंने एक ऐसे आदिवासी राज्य की परिकल्पना

[65] *कॉन्स्टीट्युएन्ट असेम्बली डिबेट*, वॉल्यूम I, पृ. 143-44; रामचंद्र गुहा (2007) : 116 पर उद्धृत.

[66] जयपाल सिंह मुंडा (2017ख; प्रथम प्रकाशन : 20 जनवरी, 1939) : 110.

[67] वही : 112.

की जिसके प्रशासन की मशीनरी का मुख्य लक्ष्य आदिवासियों की समृद्धि और भलाई हो।[68]

वे आदिवासी समाज के भीतर विभाजन और संकुचित पहचानों को बढ़ावा देने के ख़िलाफ़ थे। उन्होंने आदिवासियों की स्थिति को हिंदुओं और मुस्लिमों से अलग माना, क्योंकि जहाँ हिंदू और मुस्लिम सामाजिक आज़ादी के मसले पर संघर्ष कर रहे थे, वहीं आदिवासियों ने लोकतंत्र, विवाह क़ानून, स्त्री-पुरुष समानता, ग्रामीण शासन व्यवस्था और सरल जीवन से जुड़े मसलों को काफ़ी पहले सुलझा लिया था। उनके अनुसार, आदिवासी सरल हैं, और इन्हें आसानी से संतुष्ट किया जा सकता है, तथा निजी और सार्वजनिक नैतिकता की उनकी भावना काफ़ी उच्च है।[69] अपने राजनीतिक जीवन में प्रवेश के पहले वर्ष में ही उन्होंने राजेंद्र प्रसाद को लिखी एक चिट्ठी में यह स्पष्ट किया यदि कोई आदिवासी हिंदू धर्म, इस्लाम या किसी अन्य धर्म को अपना लेता है, तो उसकी आदिवासी पहचान ख़त्म नहीं होती है।[70] इसी पत्र में उन्होंने यह भी कहा कि सरकार को हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, ब्रह्म समाज या किसी अन्य मिशन के संदर्भ में तटस्थ रहना चाहिए।[71] ग़ौरतलब है कि इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनने के बाद झारखंड क्षेत्र से आने वाले आदिवासी कांग्रेसी नेता कार्तिक उराँव ने यह अभियान चलाया कि जिन आदिवासियों ने ईसाई या इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया है, उन्हें अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता न दी जाए।[72] उन्होंने इससे संबंधित एक ज्ञापन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को सौंपा था, जिस पर संसद के दोनों सदनों के 348 सांसदों के हस्ताक्षर थे।[73] जयपाल सिंह ने आदिवासियों के बीच धार्मिक आधार पर इस विभाजन का विरोध किया। इंदिरा गांधी ने अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ से इस मुद्दे को रफ़ा-दफ़ा करवा दिया क्योंकि वे इसे आदिवासी समाज के भीतर बँटवारे को जन्म देने वाला मानतीं थीं। यह भी ग़ौरतलब है कि आदिवासी महासभा मुख्य रूप से आदिवासियों का संगठन था। (झारखंड पार्टी के निर्माण के बाद ही ग़ैर-आदिवासियों को उस पार्टी में सदस्यता लेने की छूट मिली। किन्तु जयपाल सिंह आदिवासी महासभा के अपने संबोधन में भी विभिन्न आदिवासी समुदायों के साथ ही साथ छोटानागपुर क्षेत्र के सभी हिंदुओं, मुस्लिमों, आंग्ल-इंडियनों से भी एकजुट होकर एक अलग प्रांत के निर्माण की आवाज़ बुलंद करने का आह्वान किया।[74] यह इस बात का प्रमाण है कि आदिवासी हितों की आवाज़ उठाने के बावजूद जयपाल सिंह आदिवासियों को शेष समाज से बिल्कुल पृथक कर देने के पक्षधर नहीं थे। उन्होंने 1939 के

---

[68] वही : 114.

[69] वही : 111.

[70] जयपाल सिंह ने यह विचार 24 मई, 1939 को राजेंद्र प्रसाद को लिखी चिट्ठी में स्पष्ट किए थे. यह चिट्ठी वाल्मीकी चौधरी द्वारा संपादित राजेंद्र प्रसाद के पत्रों और दस्तावेज़ों में संकलित है. देखें वाल्मीकी चौधरी (1984) : 75.

[71] उन्होंने यह माँग की कि बिहार कॉन्ग्रेस द्वारा ईसाई मिशन के ख़िलाफ़ चलाए गए प्रोपेगेंडा की जाँच होनी चाहिए. देखें वाल्मीकी चौधरी (1984) : 75.

[72] बलबीर दत्त (2017) : 211-12.

[73] वही : 211-12.

[74] जयपाल सिंह मुंडा (2017क; प्रथम प्रकाशन 20 जनवरी, 1939) : 107.

आदिवासी महासभा के सम्मेलन के दूसरे संबोधन में उन्होंने यह कहा कि :

> आदिवासियों को जनसंख्या के ज़्यादा विकसित तबक़ों से पृथक रखने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन उन्हें क़र्ज़ के बोझ से मुक्त करने, उनकी खेती में सुधार करने तथा संगठित बाज़ार द्वारा उनके सामान्य कल्याण को बढ़ावा देने आदि के लिए विशेष उपाय और वित्तीय सहायता उपलब्ध कराया जाना चाहिए। साथ ही, उन्हें तेज़ी से विकसित वर्गों के स्तर की शिक्षा उपलब्ध कराई जानी चाहिए। उनकी पृथकता या उन्हें बिल्कुल अलग-थलग रखना भारत के राष्ट्रीय जीवन के लिए घातक होगा।[75]

जयपाल आदिवासियों को आधुनिक शिक्षा से अलग नहीं करना चाहते थे, बल्कि वे उन तक इस शिक्षा की पहुँच बढ़ाना चाहते थे। उनकी मुख्य चिंता यह थी कि आदिवासियों की शिक्षा के लिए पर्याप्त व्यवस्था नहीं की जा रही है। आदिवासी महासभा के 1939 के अधिवेशन के अपने पहले संबोधन में उन्होंने आदिवासियों की शिक्षा की उपेक्षा के लिए सरकार की आलोचना की। उन्होंने कहा कि 'शिक्षा हमारी सबसे बड़ी ज़रूरत है। आदिवासी शायद सबसे पिछड़े हुए समूह हैं, इसलिए उन्हें शिक्षा सुविधाओं की सबसे ज़्यादा आवश्यकता है।'[76] उनका मुख्य ज़ोर इस पर था कि आदिवासियों को ऐसी विशिष्ट सुविधाएँ दी जाएँ, जिससे वे अपनी भूमि और संसाधनों पर हक़ हासिल कर पाएँ और उनकी सुरक्षा कर पाएँ।

जयपाल सिंह ने आदिवासी संस्कृति के बेहतर पहलुओं को क़ायम रखते हुए नवीन और वैज्ञानिक पहलुओं को जोड़ने पर बल दिया। उन्होंने यह प्रश्न किया कि आख़िर आदिवासियों की प्रथाओं के अच्छे पहलुओं को क़ायम रखते हुए उन्हें प्रोत्साहन क्यों नहीं दिया जा सकता है?

> मुझे इस बात का कोई कारण नज़र नहीं आता है कि आख़िर आदिवासियों की शिक्षा और स्वच्छता तथा सफ़ाई के प्रसार और उनकी खेती की पद्धति में सुधार और ऐसे ही अन्य मसलों का उनकी परंपरा और वयस्क विवाह की प्रथा, तथा खाने-पीने आदि में कोई रोक-टोक न होने जैसे सरल किन्तु बहुत से मायनों में प्रशंसनीय नियमों के साथ समन्वय क्यों नहीं हो सकता।[77]

उन्होंने आदिवासियों को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराने की वकालत की और यह कहा कि 'आदिवासी अभी इतने सरल हैं कि सामाजिक सुरक्षा के बग़ैर उन्हें अभी भी आसानी से धोखा दिया जा सकता है, और वे आसानी से बाहर से आए साहूकारों के शिकार हो जाते हैं,

[75] जयपाल सिंह मुंडा (2017ख; प्रथम प्रकाशन 20 जनवरी, 1939) : 112; उन्होंने 24 मई, 1939 को राजेंद्र प्रसाद को लिखी चिट्ठी में भी आदिवासियों के प्रतिनिधित्व और उनके लिए बेहतर सुविधाओं को सुनिश्चित करने की माँग की. देखें वाल्मीकी चौधरी (1984) : 75.

[76] जयपाल सिंह मुंडा (2017क) : 108.

[77] जयपाल सिंह मुंडा (2017ख; प्रथम प्रकाशन 20 जनवरी, 1939) : 112.

ये साहूकार उनकी ज़मीन हड़प लेते हैं तथा धरती-पुत्र आदिवासी मज़दूर या पाडू किसान (या झूम खेती करने वाले किसान) बनकर रह जाते हैं।[78]

आदिवासी महासभा के अपने पहले संबोधन में उन्होंने खेती, लोक स्वास्थ्य में सुधार, ग्रामीण विकास को बढोतरी, उद्योगों तथा प्रशासन को बेहतर बनाने के माध्यम से आदिवासियों की स्थिति को बेहतर बनाने पर बल दिया।[79] उन्होंने आदिवासियों के जीवन में वन विभाग के बढ़ते नियंत्रण और हस्तक्षेप की आलोचना की। उन्होंने यह स्वीकार किया कि वनों में रहने वाले आदिवासी वन अधिकारियों के दमन, वन अपराधों के लिए सख़्त जुर्माने के प्रावधान, चराई आर ईंधन की लकड़ियों, घास और खाने योग्य फलों पर लगे अत्यधिक प्रतिबंध का सामना कर रहे हैं, जो उनके लिए असंतोष का विषय है। वन या राजस्व विभाग के उच्चतर अधिकारियों द्वारा उनकी शिकायतों पर शायद ही कभी ध्यान दिया जाता है।[80] निश्चित तौर पर, वन विभाग की इस आलोचना और आदिवासियों द्वारा अपने प्रशासन और संसाधनों आदि के प्रबंधन पर जयपाल सिंह द्वारा ज़ोर दिये जाने के कारण यह निष्कर्ष निकालना ग़लत नहीं होगा कि वे वन अधिकारियों को मिली अत्यधिक शक्तियों को ख़त्म करके एक ऐसी व्यवस्था बनाना चाहते थे जिसमें आदिवासियों का वन और इसके संसाधनों पर ज़्यादा नियंत्रण हो।

जयपाल सिंह ने आदिवासियों के शासन प्रबंधन को मुख्य रूप से आदिवासी प्रतिनिधियों को देने पर ज़ोर दिया, तथा मौजूदा क़ानूनों से आगे जाकर ऐसे क़ानूनों को बनाने पर बल दिया जिससे आदिवासियों के जल, जंगल और ज़मीन पर हक़ को सुरक्षित रखा जा सके। वे आदिवासियों के जल, जंगल, ज़मीन पर हक़ के मुखर समर्थक के रूप में सामने आते हैं।

जयपाल सिंह आदिवासियों के बीच शिक्षा का प्रसार करके उन्हें अपने अधिकारों के प्रति इतना जागरूक करना चाहते थे कि बाहरी लोग उनका शोषण न कर पाएँ। उन्होंने न सिर्फ़ टाटा जैसी कम्पनियों द्वारा ग़ैर-आदिवासियों को नौकरी में प्राथमिकता देने का पुरज़ोर विरोध किया, बल्कि आदिवासियों को मज़दूरों के रूप में संगठित करने का प्रयास भी किया। उन्हें यह अहसास था कि टाटा जैसी कंपनियाँ झारखंड क्षेत्र की भूमि, अन्य प्राकृतिक संसाधनों और सस्ते मानव श्रम का इस्तेमाल करके लाभ कमा रही हैं। लेकिन मानव श्रम के स्तर पर भी बहुत ही छोटे स्तर के काम आदिवासियों के हिस्से में आ

[78] वही : 112.

[79] जयपाल सिंह मुंडा (2017क; प्रथम प्रकाशन 20 जनवरी, 1939) : 109.

[80] जयपाल सिंह मुंडा (2017ख; प्रथम प्रकाशन 20 जनवरी, 1939) : 113.

रहे थे, और अधिकांश नौकरियों पर बाहरी लोगों का क़ब्ज़ा हो जा रहा था। इसलिए उन्होंने टाटा और तत्कालीन बिहार सरकार पर इस बात के लिए दबाव बनाने का प्रयास किया कि नौकरियों में आदिवासियों को प्राथमिकता मिले। हालाँकि श्रीकृष्ण सिन्हा के नेतृत्व वाली बिहार सरकार ने उनकी माँगों को कोई महत्त्व नहीं दिया।

उन्होंने 1939 के मध्य में अपने जमशेदपुर-सिंहभूम दौरे के दौरान उन्होंने आदिवासियों से ख़ुद का मज़दूर यूनियन बनाने की अपील की। हालाँकि मुख्य रूप से आदिवासी महासभा के बैनर तले वे एक अलग झारखंड प्रांत की मुहिम से जुड़े हुए थे, और वे इसे ही अपने क्षेत्र के आदिवासियों की विभिन्न समस्याओं का हल मानते थे, लेकिन इसके साथ ही आदिवासी मज़दूरों को एकजुट करने की इच्छा ने भी उनके काम को प्रेरित किया। 1947 आते-आते उन्हें यह अहसास हुआ कि आदिवासी मज़दूरों की संख्या में पहले की तुलना में वृद्धि हो गई है, ऐसे में उन्हें व्यवस्थित रूप से आदिवासी महासभा और आंदोलन की परिधि में लाना आवश्यक है। यही सोचकर उन्होंने 1947 में आदिवासी लेबर फ़ेडरेशन की स्थापना की। 16 मार्च, 1947 को जोड़ापोखर, झींकापानी (सिंहभूम) में मज़दूरों की एक बड़ी सभा आयोजित की गयी, और इसमें जयपाल सिंह को आदिवासी लेबर फ़ेडरेशन का अध्यक्ष चुना गया।[81] लेकिन मौजूदा मज़दूर नेतृत्व की दबंगई के कारण जयपाल सिंह का प्रयास बहुत ठोस रूप धारण नहीं कर पाया।[82]

IV. जयपाल सिंह और मूल-निवासी सैद्धांतिक विमर्श

जयपाल सिंह ने आदिवासियों को मूल निवासी मानते हुए उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने की माँग की। वे 'एबॉरिजनल' पहचान को आदिवासियों की मूल पहचान मानते थे, और चाहते थे कि संवैधानिक रूप से भी इस शब्द का प्रयोग किया जाए। उन्होंने मूल अधिकारों से संबंधित कुछ प्रावधानों पर बहस के समय उस प्रस्तावित संशोधन पर स्पष्टीकरण माँगा, जिसमें एबॉरिजनल या आदिम जनजाति की बजाय अनुसूचित जनजाति शब्द का इस्तेमाल करने की बात कही गई थी।[83] उन्होंने संविधान सभा में और अपने अन्य भाषणों और लेखों में भी ख़ुद को 'जंगली' या आदिवासी के रूप में प्रस्तुत किया। यह सभी 'आदिवासी' अवधारणा के प्रति उनके गहरे जुड़ाव को ही दर्शाता है। हालाँकि वर्जिनियस खाखा ने यह बताया है कि भारत में मूल निवासी या आदिवासी शब्द का प्रयोग वर्त्तमान झारखंड क्षेत्र में ही तक़रीबन 1920 के दशक में आरंभ हुआ। लेकिन पूरे देश में कोई समूह यह दावा नहीं कर सकता है कि वही देश का मूल निवासी है। इसलिए यह मुमकिन है कि कोई भी समूह एक

[81] अश्विनी कुमार पंकज (2015) : 70.

[82] वही; साथ ही देखें रश्मि कात्यायन (2004) : 110; ग़ौरतलब है कि रश्मि कात्यायन ने जयपाल सिंह की आत्मकथा संपादित की है जो *मरङ गोमके जयपाल सिंह : लो बिर सेंदरा एन ऑटोबॉयोग्राफ़ी* शीर्षक से प्रकाशित है.

[83] बलबीर दत्त (2017) : 112.

साथ मूल निवासी हो भी और मूल निवासी न भी हो। इस तरह के कई उदाहरण मौजूद हैं। मसलन, झारखंड में निवास करने वाले उराँव, मुण्डा और बहुत से अन्य समुदायों को भारत देश में और झारखंड में अपने मूल निवास के आधार पर मूल निवासी होने का वैध दावा हो सकता है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि वे असम या बंगाल में मूल निवासी होने का दावा कर सकते हैं या नहीं, जहाँ वे तक़रीबन एक सदी पहले जाकर बसे हैं। खाखा का यह मानना है कि भारत की जनजातियों ने आदिवासी पहचान को अपना लिया है।[84] बहरहाल, जयपाल सिंह ने मानवशास्त्र के गहन अध्ययन के आधार पर आदिवासियों के भारत का मूल निवासी होने का दावा नहीं किया था। हालाँकि, मानवशास्त्री भी मोटे तौर पर यह स्वीकार करते हैं कि झारखंड के निवासी कम से कम उस क्षेत्र के मूल निवासी हैं। ऐसे में महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या मौजूदा समय में मूल निवासी अधिकारों से संबंधित विमर्श और जयपाल सिंह के विचारों में किसी तरह का साम्य है?

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मूल निवासियों के अधिकारों के बारे में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा कई प्रस्ताव पारित किए गए। पश्चिमी सैद्धांतिक रूपरेखा में भी मूल निवासियों के अधिकारों के संदर्भ में सैद्धांतीकरण किया गया है। इन विभिन्न सैद्धांतिक विमर्शों को अगर जयपाल सिंह के विचारों के बरअक्स रखकर देखा जाए, तो निस्संदेह यह बात सामने आती है कि यद्यपि जयपाल सिंह ने कोई ठोस सैद्धांतिक लेखन नहीं किया, लेकिन उनके विचारों में वे सूत्र मौजूद हैं जो मूल-निवासियों के अधिकारों से संबंधित विमर्श में सामने आते हैं। मिसाल के तौर पर हम सितम्बर 2007 में पारित *मूल निवासियों के अधिकारों की उद्घोषणा* पर विचार करते हैं। इसके अनुसार, मूल निवासियों की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचनाओं का सम्मान किया जाना चाहिए तथा उनकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परंपराओं की हिफ़ाज़त होनी चाहिए, तथा ज़मीन, भू-क्षेत्र और संसाधनों पर उनके अधिकारों को मान्यता मिलनी चाहिए। इस घोषणा पत्र के अनुच्छेद 10, 26 और 29 में मूल निवासियों को उनकी पारंपरिक ज़मीन और संसाधनों पर हक़ देने का उल्लेख किया गया है।[85] इसी तरह, 1980 के दशक के बाद उदारवादी सैद्धांतिक रूपरेखा के भीतर हुए लेखन में मूल निवासियों के उनके संसाधनों पर अधिकार को लेकर कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्रीकरण किए गए हैं, और यह रेखांकित किया गया है कि सिर्फ़ पारंपरिक उदारवादी व्यक्तिगत अधिकारों के माध्यम से इन समूहों के हितों की रक्षा नहीं की जा सकती है। विल किमलिका ने बहुसंस्कृतिवाद से संबंधित अपने सैद्धांतीकरण में यह रेखांकित किया है कि मूल निवासियों को स्वशासन और अपनी ज़मीन का हक़ है। यदि इन समूहों को ये अधिकार नहीं दिये जाते हैं तो वे अपनी सामाजिक संस्कृति खो देंगे

[84] वर्जीनीयस खाखा (1999).

[85] द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से मूल निवासियों के अधिकारों पर व्यवस्थित चर्चा आरंभ हुई. 1966 में इन अधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार अभिसमयों में सम्मिलित किया गया. इसके बारे में जागरूकता बढ़ने के साथ ही 1993 को अंतर्राष्ट्रीय मूल निवासी वर्ष घोषित किया गया. देखें कमल नयन चौबे (2015) : 12-15; यूनाइटेड नेशन्स डिक्लेरेशन्स ऑफ़ इंडिजेनस पीपॅल (2007).

और उन्हें वह संदर्भ भी नहीं मिलेगा, जिसमें वे अपने अपनी व्यक्तिगत आज़ादी का सही तरीक़े से उपयोग कर सकते हों।[86] विल किमलिका मुख्य रूप से सैद्धांतिक संदर्भ में अपने विचारों को रखते हैं किन्तु जेम्स टुली ने इससे आगे बढ़ते हुए इस बात पर बल दिया है कि मूल निवासियों और ग़ैर-मूल निवासियों के बीच संबंध तीन अभिसमयों पर आधारित होने चाहिए। ये अभिसमय हैं : मान्यता, निरंतरता और सहमति। अर्थ यह है कि ग़ैर-मूल निवासी राष्ट्रों के साथ मूल निवासी राष्ट्रों को भी मान्यता दी जानी चाहिए, अर्थात मूल निवासी लोगों के एक राष्ट्र होने की भावना को संदेह से या पृथक्करण की माँग के रूप में नहीं देखा नहीं चाहिए; मूल निवासियों के क़ानूनों और परंपराओं की निरंतरता को स्वीकार किया जाना चाहिए; और ग़ैर-मूल निवासी और मूल निवासी लोगों के बीच संबंधों में लोकतांत्रिक मानक को स्वीकार किया जाना चाहिए (इसका अर्थ यह है कि ग़ैर-मूल निवासियों को मूल निवासियों पर ज़बर्दस्ती कोई संस्था या क़ानून नहीं थोपना चाहिए)।[87]

जयपाल सिंह ने आदिवासियों के शासन प्रबंधन को मुख्य रूप से आदिवासी प्रतिनिधियों को देने पर ज़ोर दिया, तथा मौजूदा क़ानूनों से आगे जाकर ऐसे क़ानूनों को बनाने पर बल दिया जिससे आदिवासियों के जल, जंगल और ज़मीन पर हक़ को सुरक्षित रखा जा सके। वे आदिवासियों के जल, जंगल, ज़मीन पर हक़ के मुखर समर्थक के रूप में सामने आते हैं; वन विभाग के मनमानेपन का विरोध करते हैं, लेकिन उनके आदिवासी की तस्वीर कल-कारख़ानों और तकनीक से दूर हटकर अत्यंत सरल और प्रकृति की गोद में जीवन व्यतीत करने वाले आदिवासी की तस्वीर नहीं है। जयपाल सिंह यह चाहते थे कि ख़ुद आदिवासी यह तय करें कि उनके लिए विकास का सही रास्ता क्या है।1990 के बाद के दौर में आदिवासियों के बीच राजनीतिक चेतना बढ़ने के साथ ऐसे क़ानूनों की माँग ज़ोर पकड़ती गई जिनसे वन विभाग के मनमानेपन पर रोक लगे, वन भूमि और संसाधनों पर आदिवासियों और अन्य वनाश्रित समूहों के अधिकार सुनिश्चित हों। इसी कारण, 1996 में *पंचायत (अनुसूचित क्षेत्र विस्तार) अधिनियम (या पेसा) और 2006 में अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकार मान्यता) अधिनियम* (या वन अधिकार क़ानून) को पारित किया गया। पेसा सिर्फ़ पाँचवीं अनुसूची के क्षेत्रों से संबंधित है, वहीं वन अधिकार क़ानून पूरे देश के वन क्षेत्रों पर लागू होता है। ये क़ानून स्वायत्त आदिवासी जीवन और वन संसाधनों पर आदिवासियों के बारे में जयपाल सिंह की परिकल्पना के अनुरूप ही हैं।[88] जयपाल सिंह आदिवासियों के बीच जिस तरह की राजनीतिक चेतना लाना चाहते थे, वह समय के साथ ज़्यादा मज़बूती से उभरकर सामने आई है। हाल के वर्षों में 'पत्थलगड़ी आंदोलन' और झारखंड विधानसभा द्वारा 'सरना' धर्म को मान्यता देने संबंधी प्रस्ताव पारित

[86] विल किमलिका के विचारों की समझ के लिए देखें विल किमलिका (1995).

[87] जेम्स टुली (1995); कमल नयन चौबे (2015).

[88] हालाँकि यह भी सच है कि इन क़ानूनों को बहुत प्रभावकारी तरीक़े से लागू नहीं किया गया. विस्तार के लिए देखें, कमल नयन चौबे (2015).

करने को इसका प्रमाण माना जा सकता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि विशेष रूप से आज़ादी के पूर्व की अपनी राजनीतिक रणनीतियों के कारण जयपाल सिंह काफ़ी हद तक डॉ. भीमराव आम्बेडकर की तरह ही एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में सामने आते हैं, जिन्हें 'मुख्यधारा' के राष्ट्रवादी वृत्तांत या नैरेटिव में पूरी तरह फ़िट करना मुमकिन नहीं है। उन्होंने आदिवासियों की समस्याओं को भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के नेतृत्व में चलने वाले आंदोलन की व्यापक रूपरेखा में समाहित करने के ख़िलाफ़ संघर्ष किया, और आदिवासियों की चिंताओं को सामने लाने के लिए कई बार ऐसी रणनीतियों का सहारा लिया (मसलन, मुस्लिम लीग से सहयोग), जिसे राष्ट्रवाद की 'मुख्यधारा' के वृत्तांत में एक बड़ी चूक या अपराध के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। लेकिन जयपाल सिंह के लेखन, संबोधन या रणनीतियों में आदिवासी प्रश्न के साथ ही साथ भारत राष्ट्र-राज्य के प्रति एक स्पष्ट चिंता दिखती है, और तमाम संदेहों के बावजूद वे भारतीय राष्ट्र के प्रति अपनी आशान्विता प्रदर्शित करते हैं।

उन्होंने अतीत में आदिवासियों के साथ हुए अन्यायों, आदिवासियों की पृथक पहचान (और अन्य संबोधनों में) आदिवासियों के अधिकारों की सुरक्षा हेतु विशिष्ट और ठोस उपायों पर ज़ोर देने के साथ ही नये भारतीय संविधान और राष्ट्र-राज्य की परिकल्पना के प्रति अपनी निष्ठा और वचनबद्धता व्यक्त की। आदिवासियों की विशिष्टता को सुनिश्चित रखने पर ज़ोर देने के साथ ही भारतीय राष्ट्र के प्रति भी वे मज़बूत जुड़ाव रखते थे। फ़रवरी 1948 में आदिवासी महासभा के सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने एक ओर यह कहा कि आज़ादी के बाद आदिवासियों के लिए सबसे बड़ी समस्या यह है कि 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद' का स्थान 'बिहारी साम्राज्यवाद' ने ले लिया है। लेकिन इसके साथ ही उन्होंने भारतीय संघ के साथ अपनी वचनबद्धता भी व्यक्त की, उन्होंने भावुक अंदाज़ में गांधीजी की दुखद हत्या का उल्लेख किया, और अपने भाषण के आख़िर में उन्होंने एक नारा दिया जिसमें स्थानीय गर्व के साथ व्यापक भारतीय देशभक्ति की भी झलक मिली। यह नारा था : 'जय झारखंड, जय आदिवासी, जय हिंद!'[89] इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि जब संविधान का निर्माण कार्य चल रहा था तो नगा समूह लगातार ख़ुद भारत से अलग देश घोषित करने की माँग कर रहे थे। उनका एक प्रतिनिधि मंडल दिल्ली आया और उसने गांधी और नेहरू के साथ मुलाक़ात की, और अन्य लोगों के अलावा जयपाल सिंह से भी मिला। जयपाल ने उन्हें स्पष्ट रूप से यह तथ्य बता दिया कि 'नागा हिल्स हमेशा से ही भारत का भाग रहे हैं। इसलिए पृथकता का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता है।'[90]

[89] जयपाल सिंह के इस संबोधन के लिए देखें रामदयाल मुंडा और एस. बोसु मलिक (सं.) (2003) : 2-14; साथ ही देखें रामचंद्र गुहा (2007) : 266-7.

[90] सीएडी, वॉल्यूम 4 : 947-8; रामचंद्र गुहा (2007) : 265 पर उद्धृत; रमाशंकर सिंह ने जयपाल सिंह द्वारा 22 जुलाई, 1947 को राष्ट्रीय ध्वज संबंधी प्रस्तावों पर भाषण का उल्लेख किया है जिसमें उन्होंने आदिवासियों को देश के अन्य नागरिकों के बराबर माना था. जयपाल सिंह के अनुसार, 'यह राष्ट्रीय झंडा आदिवासियों को नया संदेश देगा कि उनका छह हज़ार वर्षों का

हालाँकि एक राजनीतिक व्यक्तित्व के रूप में जयपाल सिंह की रणनीतियों की कुछ बुनियादी ख़ामियों को भी इंगित किया जाना आवश्यक है। इस संदर्भ में मैं तीन प्रमुख बिंदुओं को रेखांकित करना चाहता हूँ : पहला, हालाँकि जयपाल सिंह ने संविधान सभा में आदिवासियों के भू-अधिकारों से संबंधित पहले के क़ानून (मसलन, *छोटानागपुर टिनेंसी ऐक्ट*) क़ायम रखने और आवश्यकतानुसार उन्हें मज़बूत बनाने पर ज़ोर दिया, लेकिन झारखंड पार्टी के अध्यक्ष के रूप में या कॉन्ग्रेस के सांसद के रूप उन्होंने आदिवासियों की ज़मीन हड़पे जाने के ख़िलाफ़ जमीनी स्तर पर किसी प्रतिरोध आंदोलन को संगठित करने का प्रयास नहीं किया।[91] दूसरा, यह बात सच है कि अत्यधिक लोकप्रिय और सुगठित संगठन वाले राजनीतिक दल कॉन्ग्रेस के सामने जयपाल सिंह की झारखंड पार्टी, समर्थन आधार और संसाधनों के मामलों में काफ़ी कमज़ोर थी, इसलिए, कामाख्या नारायण सिंह जैसे बड़े उम्मीदवारों को अपनी पार्टी से टिकट देकर राज्यसभा भेजने के फ़ैसले को व्यावहारिक राजनीति का तक़ाज़ा माना जा सकता है। किन्तु यह भी सच है कि जयपाल सिंह ने अपनी पार्टी के भीतर लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने का कोई सक्रिय प्रयास नहीं किया, 1950-63 तक वही पार्टी के अध्यक्ष रहे और पार्टी में उनकी मर्ज़ी को ही सर्वोपरि माना गया। एक हद तक मौजूदा समय में अधिकांश क्षेत्रीय दलों की सीमाएँ झारखंड पार्टी की राजनीति में भी नज़र आती है। तीसरा, कॉन्ग्रेस में झारखंड पार्टी के विलय के उनके फ़ैसले को राजनीतिक सूझ-बूझ की कमी के रूप में इंगित किया जा सकता है। इससे पहले सन 1952 में वे विपक्षी दलों से गठजोड़ करने के जयप्रकाश नारायण के प्रस्ताव की उपेक्षा कर चुके थे। शायद यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि यदि वे ग़ैर-कॉन्ग्रेस दलों से गठजोड़ करते तो कॉन्ग्रेस की वर्चस्वशाली राजनीति को ज़्यादा ठोस तरीक़े से चुनौती दे सकते थे। किन्तु इसके स्थान पर उन्होंने कॉन्ग्रेस में विलय का रास्ता अपनाया। हालाँकि, जैसाकि आलेख में पहले उल्लेख किया गया है कि मृत्यु से पूर्व उन्हें अपने इस फ़ैसले का पछतावा भी था। इन सीमाओं के बावजूद आदिवासियों के अधिकारों के मसले को दृढ़ता से सामने रखने के सदंर्भ में जयपाल सिंह का अद्भुत योगदान है।

V. निष्कर्ष

जयपाल सिंह मुंडा भारत के सबसे वंचित समूह अर्थात आदिवासियों के एक ऐसे व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं जिसने राजनीति में आने से पहले ही एक हॉकी खिलाड़ी, प्रशासक और शिक्षक के रूप में काम करके अपनी योग्यता और प्रतिभा का लोहा मनवा लिया था।

युद्ध समाप्त हो गया है, और वे देश में उतने ही स्वतंत्र हैं जितने की अन्य व्यक्ति. रमाशंकर यह रेखांकित करते हैं कि आम्बेडकर की तरह वे भी एक राजमर्मज्ञ हैं, और उनकी राय पर चले बिना बेहतर भारत नहीं बनाया जा सकता है. देखें रमाशंकर सिंह (2020) : 123.

[91] बलबीर दत्त भी जयपाल सिंह की राजनीति की इस सीमा को रेखांकित करते हैं. देखें बलबीर दत्त (2017) : 170-72.

राजनीति में उन्होंने देश की वर्चस्वशाली धारा से अलग हटते हुए आदिवासियों की भलाई के राजनीतिक एजेंडे पर काम किया। वे आदिवासियों के लिए एक ऐसी व्यापक पहचान का निर्माण करना चाहते थे जो भारतीय होने की पहचान की अनुपूरक तो अवश्य हो किन्तु उसमें पूरी तरह समाहित न हो जाए। स्पष्टतः उनकी आवाज़ राष्ट्रवादी रूपरेखा के भीतर भिन्नता की आवाज़ के रूप में दर्ज की जानी चाहिए। जयपाल सिंह के विचारों में एक ऐसे स्वायत्त आदिवासी जीवन की तस्वीर सामने आती है, जिसमें आदिवासी पूरी दुनिया से अलग-थलग नहीं है, बल्कि वह अपनी शर्तों पर, अपने उद्देश्यों के हिसाब से आधुनिक तकनीक, शिक्षा, भाषा और जीवन के अन्य तमाम पहलुओं को अपनाता है। वे आदिवासियों के प्रतिनिधित्व, सांस्कृतिक पहचान तथा उनके जल, जंगल और ज़मीन पर अधिकार को सुनिश्चित करना चाहते थे। एक राजनीतिज्ञ के रूप में उनकी रणनीति में कुछ ख़ामियाँ अवश्य रहीं लेकिन एक-दलीय प्रभुत्व की कॉन्ग्रेस प्रणाली के दौर में उन्होंने एक लम्बे समय तक क्षेत्रीय दल के रूप में झारखंड पार्टी को सक्रिय रखा, और झारखंड क्षेत्र में वह पार्टी (पहले आदिवासी महासभा और बाद में झारखंड पार्टी के रूप में) कॉन्ग्रेस के लिए एक बड़ी चुनौती बनी रही। जयपाल सिंह को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि वैश्विक स्तर पर, और उदारवादी राजनीति सिद्धांत के भीतर मूल निवासियों के अधिकारों के प्रति चेतना जाग्रत होने से काफ़ी पहले उन्होंने भारत में आदिवासियों के मुद्दों और उनकी संभावित माँगों को ठोस तरीक़े से पेश किया। आदिवासियों के अधिकारों के बारे में उनके अधिकांश विचारों पर अब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर (मूल निवासियों के अधिकारों के संदर्भ में) सहमति बन चुकी है। निश्चित रूप से, जयपाल सिंह की राजनीति में आदिवासी संसाधनों के अत्यधिक और बलात दोहन, तथा माओवादी हिंसा या 'सलवा जुडूम'[92] जैसी राज्य प्रायोजित गतिविधियों के माध्यम से आदिवासियों को आपस में लड़ाने की साज़िश के तीखे विरोध का सूत्र मिलता है। साथ ही, उनके राजनीतिक विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे 'पत्थलगड़ी'[93] जैसे आदिवासियों के अपने ज़मीन और संसाधनों पर हक़ से जुड़े हर आंदोलन का समर्थन करते।

[92] देखें, नंदिनी सुंदर (2016); (2018).

[93] पत्थलगड़ी आंदोलन की सामान्य समझ के लिए देखें वर्जिनियस खाखा (2019).

संदर्भ

अनुज कुमार सिन्हा (2013), *झारखंड आंदोलन का दस्तावेज़ : शोषण, संघर्ष और शहादत*, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली.

अश्विनी कुमार पंकज (2015), *मरङ गोमके जयपाल सिंह मुंडा*, विकल्प प्रकाशन, दिल्ली.

कमल नयन चौबे (2015), *जंगल की हक़दारी : राजनीति और संघर्ष*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

————(2018), 'सलवा जुडूम : राज्य, माओवाद और हिंसा की अंतहीन दास्तान', *प्रतिमान : समय समाज संस्कृति*, 6 (12).

————(2019), 'आदिवासी जीवन और वनवासी कल्याण आश्रम', *प्रतिमान : समय समाज संस्कृति*, 7(14).

के. एस. सिंह (1982), *ट्राइबल मूवमेंट इन इंडिया*, खंड 1 और 2, मनोहर, नई दिल्ली

कुमार सुरेश सिंह (1983), *बिरसा मुंडा ऐंड हिज मूवमेंट, 1872-1901 : अ स्टडी ऑफ़ मिलेनेरियन मूवमेंट इन छोटानागपुर*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता और लंदन.

जयपाल सिंह मुंडा (2017क), 'विल नॉट बी सटिस्फ़ाइड विद लेस दैन अ सेपरेट प्रॉविंस, (प्रथम प्रकाशन, 20 जनवरी 1939), *आदिवासीडम : सेलेक्टेड राइटिंग्स ऐंड स्पीचेज़ ऑफ़ जयपाल सिंह मुंडा,* प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, राँची : 105-9.

——————(2017ख), 'वी मस्ट हैव अ सेपरेट प्रॉविन्स, टु सुट्स द स्पेशल नीड्स ऑफ़ आदिवासीज' (प्रथम प्रकाशन : 20 जनवरी, 1939), *आदिवासीडम : सेलेक्टेड राइटिंग्स ऐंड स्पीचेज ऑफ़ जयपाल सिंह मुंडा*, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, राँची, पृ. 110-114.

——————(2017ग), 'आदिवासीस्थान-हिंदुस्थान-पाकिस्थान' (प्रथम प्रकाशन 28 मई 1940), अश्विनी कुमार पंकज (सं.), *आदिवासीडम : सेलेक्टेड राइटिंग्स ऐंड स्पीचेज़ ऑफ़ जयपाल सिंह मुंडा*, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, राँची : 45-49.

——————(2017घ), 'गांधीज़म ऐंड सस्पिशन ऑफ़ आदिवासीज', (प्रथम प्रकाशन : 2 जून, 1940 आदिवासीडम : सेलेक्टेड राइटिंग्स ऐंड स्पीचेज ऑफ़ जयपाल सिंह मुंडा, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, राँची : 50-53.

जेम्स टुली (1995), *स्ट्रेंज मल्टीप्लिसिटी : कॉन्स्टीट्यूशनलिज़म इन ऐन एज ऑफ़ डायवर्सिटी*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

डॉ. गिरधारी राम गौंझू 'गिरिराज' (2001), *झारखंड का अमृत पुत्र मरङ गोमके जयपाल सिंह*, पझरा प्रकाशन, राँची.

डेविड हार्डीमन (2003), *गांधी : इन हिज टाइम ऐंड आवर,* परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

बलबीर दत्त (2017), *जयपाल सिंह : एक रोमांचक अनकही कहानी (जीवनी, संस्मरण एवं ऐतिहासिक दस्तावेज),* प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली.

महाश्वेता देवी (1998), *जंगल के दावेदार : आदिवासी संघर्ष की महागाथा*, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली.

मुकेश रंजन (2020), 'झारखंड असेम्बली पासेज रिसोल्यूशन ऑन सरना कोड', *द न्यू इंडियन एक्सप्रेस*, 11 नवम्बर, वेब पता : https://www.newindianexpress.com/nation/2020/nov/11/jharkhand-assembly-passes-resolution-on-sarna-code-2222467.html.

नंदिनी सुंदर (1997), *सबॉल्टर्न्स ऐंड सोवरेन्स : ऐन एंथ्रोपोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ़ बस्तर*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

————(2016), द *बर्निंग फॉरेस्ट : इंडियाज वॉर इन बस्तर*, जॉगरनॉट बुक्स, नई दिल्ली.

'यूनाइटेड नेशंस डिक्लेरेशंस ऑन द राइट्स ऑन इंडिजेनस पीपॅल 2007', संकलित, *सोशल चेंज : जर्नल ऑफ़ द कौंसिल ऑफ़ सोशल डिवलपमेंट*, 38 (3).

रमाशंकर सिंह (2020), 'किसे चाहिए संविधान? भारत के सार्वजनिक जीवन में संविधान की छवियाँ : संविधान सभा के बहाने एक चर्चा', *आलोचना*, अक्टूबर-दिसम्बर, 63 (4).

रामचंद्र गुहा (2007), *इंडिया आफ़्टर गांधी : द हिस्ट्री ऑफ़ द वर्ल्ड्स लार्जेस्ट डेमोक्रेसी*, मैकमिलन, दिल्ली.

रामदयाल मुंडा और एस. बोसु मलिक (सं.) (2003), *द झारखंड मूवमेंट : इंडिजेनस पीपॅल्सेज स्ट्रगल फॉर ऑटोनॉमी इन इंडिया*, आईडब्ल्यूजीआईए, कॉपेनहेगन

वाल्मीकी चौधरी (1984), *डॉ. राजेंद्र प्रसाद : कॉरेसपॉन्डेंस ऐंड सेलेक्ट डाक्यूमेंट्स*, अलाइड प्रेस, नई दिल्ली

शैलेन्द्र महतो (2011), *झारखंड की समरगाथा*, निधि बुक्स, दिल्ली/पटना.

संतोष कीरो (2018), *द लाइफ़ ऐंड टाइम ऑफ़ जयपाल सिंह मुंडा*, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली.

वर्जिनियस खाखा (1999). 'ट्राइब्स एज इंडिजेनस पीपॅल ऑफ़ इंडिया', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली* 34(51).

————(2019), 'इज द पत्थलगड़ी मूवमेंट इन ट्राइबल एरियाज ऐंटी कॉन्स्टीट्युशनल', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, 54 (1).

विल किमलिका (1995), *मल्टीकल्चरल सिटीजनशिप : अ लिबरल थियरी ऑफ़ माइनॉरिटी राइट्स*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफ़र्ड.